प्रारंभिक शिक्षा में पत्रोपाधि (डी.एल.एड.)

Diploma in Elementary Education (D.El.Ed.)

कला शिक्षा एवं लोक संस्कृति (भाग–2)

द्वितीय वर्ष

(प्रायोगिक संस्करण)

प्रकाशन वर्ष–2018

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,
छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष–2018

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् रायपुर छत्तीसगढ़

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

सुधीर कुमार अग्रवाल (भा.व.से.)

संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वयक

डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

हेमन्त कुमार साव

विषय संयोजक

डॉ. नीलम अरोरा

पाठ्य सामग्री संकलन एवं लेखन

डॉ. नीलम अरोरा, रीता श्रीवास्तव, मीना शुक्ला,

डॉ. मोनिका सिंह, सुभाष श्रीवास्तव, संतोष कुमार साहू

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

विद्यालय में अध्ययनरत् बच्चे भविष्य में राष्ट्र का स्वरूप व दिशा निर्धारण करेंगे। शिक्षक बच्चों को कुम्हार की भाँति गढ़ता है और वांछित स्वरूप प्रदान करता है। इस गुरूतर दायित्व के निर्वहन के लिए शिक्षकों को बेहतर तरीके से तैयार करना होगा।

''शिक्षा बिना बोझ के'' यशपाल समिति की रिपोर्ट (1993) ने माना है कि शिक्षकों की तैयारी के अपर्याप्त अवसर से स्कूल में अध्ययन–अध्यापन की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इन कार्यक्रमों की विषयवस्तु इस प्रकार पुर्ननिर्धारित की जानी चाहिए कि स्कूली शिक्षा की बदलती आवश्यकताओं के संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता बनी रहे। इन कार्यक्रमों में प्रशिक्षुओं में स्व–शिक्षण और स्वतंत्र चिंतन की क्षमता के विकास पर जोर होना चाहिए।

कोठारी आयोग (64–66) से ही यह बात की जाने लगी थी कि शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षकों को बतौर पेशेवर तैयार करना अत्यंत जरूरी है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा–2005 ने भी शिक्षकों की बदलती भूमिका को रेखांकित किया है। आज एक शिक्षक के लिए जरूरी है कि वह बच्चों को जाने, समझे, कक्षा में उनके व्यवहार को समझे, उनके सीखने के लिए उपयुक्त माहौल तैयार करे, उनके लिए उपयुक्त सामग्री व गतिविधियों का चुनाव करे, बच्चे की जिज्ञासा को बनाए रखे, उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करे व उनके अनुभवों का सम्मान करे।

तात्पर्य यह कि आज की जटिल परिस्थितियों में शिक्षकों की भूमिका कहीं अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण व महत्वपूर्ण हो गई है। इसी परिप्रेक्ष्य में शिक्षक–शिक्षा को और कारगर बनाने की आवश्यकता है। शिक्षक–शिक्षा में आमूल–चूल बदलाव की आवश्यकता बताते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा–2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है कि सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में, उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में, उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाए।

प्रश्न यह है कि शिक्षक को तैयार कैसे किया जाए? बेहतर होगा कि विद्यालय में आने के पूर्व ही उसकी बेहतर तैयारी हो, उसे विद्यालय के अनुभव दिए जाएँ। इसके लिए शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम व विषयवस्तु को फिर से देखने की जरूरत है। इसी परिप्रेक्ष्य में डी.एल.एड. के पाठ्यक्रम में बदलाव किया गया है।

पाठ्यसामग्री का लक्ष्य शिक्षण विधि से हटकर शिक्षा की समझ, विषयों की समझ, बच्चों के सीखने के तरीके की समझ, समाज व शिक्षा का संबंध जैसे पहलुओं पर केन्द्रित है। पाठयक्रम में शिक्षण के तरीकों पर जोर देने के स्थान पर विषय की समझ को महत्व दिया गया है। साथ ही शिक्षा के दार्शनिक पहलू को समझने, पाठ्यचर्या के आधारों को पहचानने और बच्चों की पृष्ठभूमि में विविधता व उनके सीखने के तरीकों को समझने की शुरुआत की गई है।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से लेकर अनुदित की गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई.आर.टी. सहित जिन भी लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके ह्रदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई.टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर.टी. और डाइट के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

अंत में पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने व पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक –प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

धन्यवाद।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
इकाई–I	**प्रारंभिक कक्षाओं के लिए कला एवं कला शिक्षा –**	**01-06**
	1.1 परिचय	
	1.2 कला अनुभव एवं शिक्षण	
	1.3 कला अनुभव एवं कक्षा शिक्षण	
	1.4 कला अनुभव योजना	
	1.5 कला शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा	
इकाई–II	**कला एवं संस्कृति**	**07-12**
	2.1 परिचय	
	2.2 संस्कृति : अवधारणा एवं समझ	
	2.3 संस्कृति का महत्व	
	2.4 संस्कृति एवं सभ्यता	
	2.5 कला एवं संस्कृति	
	2.6 संस्कृति एवं शिक्षा	
	2.7 कला व संस्कृति का संरक्षण व संवर्धन	
इकाई–III	**कला का इतिहास – भारतीय कला के संदर्भ में**	**13-38**
	3.1 परिचय	
	3.2 सैन्धव सभ्यता से कला : एक दृष्टि	
	3.2.1 मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला	
	3.3 समकालीन कलाएँ व शिल्पकार	
	3.3.1 संगीत	
	3.3.2 संगीत : गायन एवं वादन	
	3.3.3 वाद्य	
	3.3.4 नृत्य	
	3.3.5 नाट्य	
	3.4 भारतीय चित्रकला की कहानी	
इकाई–IV	**कला शिक्षा : आकलन एवं मूल्यांकन**	**39-61**
	4.1 परिचय	
	4.2 आकलन व मूल्यांकन में अन्तर	

4.3 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य

4.4 मूल्यांकन के मापदण्ड

4.5 कला शिक्षा में मूल्यांकन

4.6 कला शिक्षा में मूल्यांकन के विभिन्न उपागम एवं तकनीक

4.7 कला शिक्षा में संकेतक आधारित मूल्यांकन

4.8 मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल

परिशिष्ठ, संदर्भ सूची, वाद्य यंत्र, कला, ऐतिहासिक इमारतें एवं पारम्परिक लोक नृत्य

इकाई – 1

प्रारंभिक कक्षाओं के लिए कला एवं कला शिक्षा

(Art and Art Education for Elementary Classes)

1.1 परिचय

1.2 कला अनुभव एवं शिक्षण

1.3 कला अनुभव एवं कक्षा शिक्षण

1.4 कला अनुभव योजना

1.5 कला शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा

1.1 परिचय

अब तक हमने कला, कला शिक्षा क्या है? इस पर समझ बनाई, हमने जाना कि कला मनुष्य और समाज के लिए महत्वपूर्ण है। कला व्यक्तित्व का परिष्कार करती है, व्यक्ति की योग्यता और भावनात्मक विकास में सहायक होती है। कला एक जागरूक, संवेदनशील समाज के विकास में योगदान देती है।

हम कला की चर्चा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया सन्दर्भ में करें तो हम पाएंगे कि कला का महत्व दो प्रकार से है – पहला स्वतंत्र विषय के रूप में तथा दूसरा अन्य विषयों को सिखाने के माध्यम के रूप में। हमने यह समझ बनाने की कोशिश की है कि किस तरह कला शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों के दैनिक जीवन में सौन्दर्यबोध, प्रकृति से परिचय, बंधुत्व की भावना का विकास किया जा सकता है एवं कक्षा शिक्षण को रोचक बनाया जा सकता है। अब इस इकाई के अन्तर्गत हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि कला और कला शिक्षा पर अब तक जो समझ हमने बनाई हैं, उसको ध्यान में रखते हुए हम अपने बच्चों को कैसे–कैसे और किस प्रकार (तरीके) से अभिव्यक्ति (कला अनुभव) के मौके दे सकते हैं। जिससे सीखना और सिखाना आनन्ददायी, भय रहित वातावरण में हो सकें।

कला अनुभव (Art Experience) –

कला अनुभव से हमारा आशय ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें बच्चों को विभिन्न कलाओं, चित्रकला, संगीत, नृत्य, नाटक के अनुभव से गुजारते हुए विभिन्न कलाओं से उनका परिचय कराया जाता है। कला अनुभव से आशय एक ऐसी एकीकृत प्रक्रिया से है जिसमें बच्चे की सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में शरीर, मन और मस्तिष्क तीनों की भागीदारी हो।

हम कला की उपयोगिता को दोनों तरह से स्वीकार करते हैं, स्वतन्त्र विषय के रूप में तथा अन्य विषयों को सीखने–सिखाने के माध्यम के रूप में भी। परन्तु इतनी समझ बना लेने के बाद भी कक्षा शिक्षण में हम 'कला समेकित शिक्षा' का सार्थक उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि अधिकतर कलाओं को उत्पाद उत्पन्न करने की दृष्टि से देखा जाता है। जबकि कला के द्वारा सीखना उसकी प्रक्रिया में निहित है।

गतिविधि –

आपके अनुसार निम्नलिखित में से क्या ज्यादा महत्वपूर्ण है और क्यों?

(अ) पूरा चित्र बनाना पर चित्र से कोई जुड़ाव न हो पाना।

(ब) अधूरा चित्र बनाना पर चित्र बनाने की प्रक्रिया एवं विषय से जुड़ाव हो पाना।

1.2 कला अनुभव एवं शिक्षण (Art Experience and Education) -

बच्चों को एक अच्छे कला अनुभव देने में कतई जरूरी नहीं है शिक्षक कलाकार हो या कला में महारथ हासिल कर चुका हो। परन्तु यह आवश्यक है कि उसकी दृष्टि कलात्मक हो। उसमें सौन्दर्य बोध और रचना बोध हो।

एक बेहतर कला अनुभव के आयोजन के लिए जरूरी है कि शिक्षक यह जानता हो कि बच्चे कैसे सीखते हैं। कला की प्रकृति और कला को शिक्षण के साथ कैसे जोड़ना है यह भी जानता हो। एक मनमोहक नृत्य, गीत या नाट्य की प्रस्तुति या एक अति सुन्दर चित्र बना लेना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि इसे बनाने, प्रस्तुत करने की प्रक्रिया (सृजन प्रक्रिया)। यह आवश्यक है कि शिक्षक/शिक्षिका में यह समझ अवश्य हो कि बच्चे कला के साथ कैसे संवाद करते हैं, कला को लेकर उनकी अभिव्यक्ति कैसी होती है।

1.3 कला अनुभव एवं कक्षा शिक्षण (Art Experience and Art Education) –

पिछली कक्षा में हमनें पढ़ा कला समेकित शिक्षा सीखने–सिखाने की एक ऐसी प्रक्रिया हैं जिसमें कला को एक माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है अर्थात् कला की कई विधाओं जैसे दृश्य कला के अन्तर्गत चित्रकला, मूर्तिकला कई प्रकार के शिल्प, मुखौटे, कठपुतली या अन्य सामग्रियों से कई कलात्मक वस्तुओं का निर्माण तथा प्रदर्शन कलाओं में नाटक, नृत्य, गीत, संगीत आदि को विषयों के साथ जोड़ कर आनन्ददायी वातावरण में विषयों की समझ पक्की करना। यह तब संभव होगा जब हम एक शिक्षण योजना के साथ कला को विभिन्न विषयों के साथ समावेशित करना सीख लें।

बच्चों को कला अनुभव देने के लिए यह एक चुनौति है कि किस प्रकार उन्हें उपयुक्त स्थान और सहज वातावरण उपलब्ध कराया जाए?

कक्षा या सहज उपलब्ध किसी स्थान को विभिन्न कला प्रदर्शन कार्यक्रम के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। स्थान चुनाव करते समय बच्चों की सुरक्षा, सुविधा और साफ–सफाई का ध्यान रखना होगा।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि विद्यालयों में कला अनुभवों के लिए किसी विशेष प्रकार के स्थान या व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। जैसे प्रदर्शन कला के लिए किसी भी एक स्थान को विद्यालय की सहजतानुसार मंच की तरह प्रयोग किया जा सकता है। इसमें पुरानी चादरों, साड़ियाँ, परदों आदि का उपयोग किया जा सकता है।

1.4 कला अनुभव योजना (Art Experience Planning) –

आम तौर पर विद्यालयीन समय–सारिणी में कला अनुभव के लिए कोई स्थान नहीं होता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि बच्चे कला अनुभव की विभिन्न प्रक्रियाओं में रूचिपूर्वक संलग्न हो कर विभिन्न विषयों को सुगमता पूर्वक सीखते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में कला अनुभव और भी सार्थक हैं क्योंकि बच्चे स्वयं कई खेल खेलते रहते हैं। जैसे – गुड्डे गुड़िया का विवाह रचाना, बड़ों की नकल करना, मिट्टी से आकृतियाँ बनाना, नाचना, गीत गाना आदि। अतः विद्यालयीन समय–सारिणी में कला अनुभव के लिए भी स्थान रखें। परन्तु समय में लचीलापन आवश्यक है। कला अनुभव के लिए योजनाबद्ध तरीके से अपने लक्ष्यों की संप्राप्ति करनी होगी आवश्यकतानुसार दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और वार्षिक कला–अनुभव की योजना विद्यालय स्तर पर बनाएँ तथा बच्चों के समूह बनाकर अलग–अलग कार्य देकर कला अनुभव के लक्ष्यों की संप्राप्ति की जा सकती है। कुछ सुझावात्मक बिन्दु इस प्रकार है –

- पाठ–योजना के अन्तर्गत शैक्षिक भ्रमण जिसमें संग्रहालय को शामिल करने से बच्चों को प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है।
- बच्चों द्वारा बनाई गई कलात्मक वस्तुओं, चित्रों, शिल्प आदि की प्रदर्शनी लगाने की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

- कलाकारों और शिल्पकारों को विद्यालय में आमंत्रित कर उनके अनुभवों का लाभ उठाया जा सकता है। इसके लिए कलाकारों, शिल्पकारों का स्थानीय स्तर पर मानचित्रीकरण भी किया जा सकता है। इसके लिए समय–समय पर कला और शिल्प से जुड़ी क्रियाशील कार्यशालाओं का आयोजन विद्यालय में किया जा सकता है। इन क्रियाकलाओं से विभिन्न विधाओं के स्थानीय, क्षेत्रीय और स्थापित लोक और शास्त्रीय कलाकारों से बच्चों को मिलने का मौका मिलेगा। साथ ही पुरातन व लुप्तप्रायः कलाओं से बच्चों का परिचय भी कराया जा सकता है।
- विद्यालय एवं घर में पड़ी अनुपायोगी वस्तुओं से भी विभिन्न कलाकृतियों का निर्माण करना सीखना भी एक सार्थक कला अनुभव है। इसे कबाड़ से जुगाड़ भी कहा जाता है। अतः शिक्षक अपनी समझ और अनुभव के आधार पर विभिन्न विषयों के साथ कला को समेकित कर कक्षा शिक्षण को बाल केन्द्रित, आनन्ददायी और रूचिकर बना सकते हैं।
- यह याद रखना जरूरी है कि विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति ही कला शिक्षा का मुख्य ध्येय है।

कला अनुभव के अन्तर्गत निम्न चरणों का ध्यान रखा जाना चाहिए –

गतिविधि –

1 आप अपनी कक्षा की दीवार पर एक पट्टी या जमीन/फर्श पर थोड़ा सा स्थान बच्चे की मुक्त अभिव्यक्ति के लिए छोड़ दें। बच्चे उस पर जो चाहें लिख सकते हैं, बना सकते हैं। एक माह तक उनके कामों का अवलोकन करें। अपने अवलोकनों एवं अनुभवों पर आप एक रिपोर्ट तैयार करें।

2 बच्चे जब कागज पर कुछ लकीरे खींचते है तो क्या वे सिर्फ कीरम काँटे है या उनकी अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति?

पूर्व अनुभव/ज्ञान : छात्र अध्यापक/शिक्षक यह पड़ताल कर लेंगे कि जिस विषय की चयनित अवधारणा का शिक्षण करना है, उसके प्रति उनके पास पहले से क्या समझ है। क्या उन्होंने इससे पहले उस अवधारणा के शिक्षण में कला का उपयोग किया है? साथ ही बच्चों से किस प्रकार कला अनुभव कराया जा सकता, इसकी भी स्थिति देख ली जाए। पाठ्यचर्या–पाठ्यक्रम में चयनित अवधारणा को लेकर कौन–कौन से उद्देश्य सुझाए गए हैं, उनको भी ध्यान में रख लें। बच्चों के स्तर व आयु का भी ध्यान रखना आवश्यक है। कला अनुभव के दौरान कला अनुभव की योजना बनाना अर्थात् इसकी पूर्व तैयारी आवश्यक है। कला अनुभव योजना का पूर्व निर्धारण किया तो जाए परन्तु बच्चों की रूचि और सीखने की दर के अनुसार इसमें परिवर्तन की गुजांइश भी हो। पूरे कला अनुभव के दौरान बच्चों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति के मौके मिलें। उन पर किसी तरह का दबाव न हो । जैसे कि उन पर उनकी कलावस्तु को समय पर पूरा करना। प्रयास हो कि कलाकृति को पूरा करने में, इसे बनाने की प्रक्रिया से बच्चों का जुड़ाव हो।

कला अनुभव के दौरान बच्चों से सहज संवाद होना चाहिए जिससे कक्षा में एक सकारात्मक वातावरण निर्मित हो सकें। प्रयास हो कि सभी बच्चों को विभिन्न प्रकार के अलग–अलग और अधिक अनुभव मिलें।

कला अनुभव की प्रक्रिया : कला समेकित शिक्षा संबंधी सीखने की योजना में कला संबंधी अनुभवों का समावेश दो या अधिक चरणों में किया जा सकता है।

प्रथम चरण :

इस चरण में संबंधित अवधारणा हेतु चयनित कला पक्षों/तथ्यों की सहज प्रस्तुति एवं बच्चों को प्रतिभागिता का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए जिससे बच्चे अपने अनुभवों को भी इससे जोड़ सके ।

यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है –

पर्यावरण अध्ययन में 'पत्तियों का संसार' विषय पर कक्षा शिक्षण के दौरान निम्नलिखित गतिविधियाँ भी जा सकती हैं – बच्चों से कहें कि वे अपने आस–पास से नीचे गिरी हुई पत्तियाँ उठा कर लाएं। बच्चे स्वयं अपनी लाई हुई पत्ती की भूमिका अदा कर पत्ती की विशेषताएं कक्षा में पूरे हाव–भाव के साथ बताएं । उन्हें प्रेरित करें कि वे इन पत्तियों से ग्रीटिंग कार्ड, बुक मार्क एवं अन्य कलाकृतियाँ बनाएं।

यह भी करें – बच्चों को कुछ पत्तियों को अखबार के पन्नों के बीच रखने को कहें, उन्हें 10–12 दिनों के लिए किसी चीज से दबा कर रखें। जब वे सूख जाएँ तो उनसे विभिन्न आकृतियाँ बनाए। बच्चों से कहें वे पत्तियों से जुड़े अपने अनुभव, कोई कविता या कहानी सुनाएं।

द्वितीय चरण –

इस चरण में कला अनुभव सीखने की योजना में चयनित कलापक्ष/तथ्यों की प्रस्तुति शिक्षक के द्वारा करते हुए शिक्षार्थियों को व्यक्तिगत, साथियों के साथ, छोटे और बड़े समूह में प्रस्तुति/कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। यहाँ संबंधित प्रक्रिया को शिक्षार्थियों की रूचि एवं भागीदारी के अनुसार कई बार दुहराए जाने का अवसर दिया जाना चाहिए।

कला अनुभव को दूसरे विषयों से जोड़ना : कला समेकित शिक्षा विभिन्न विषयों को आपस में जोड़ने को पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। किसी खास विषय की अवधारणा, दक्षता, प्रकरण आदि हेतु चयनित कला पक्ष/तथ्य दूसरे विषय की अवधारणाओं, दक्षताओं के विकास में भी मदद कर सकते हैं। यहाँ यह ध्यान देना जरूरी है कि कला अनुभवों के चयन के क्रम में इस तथ्य पर निश्चित तौर पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि वे अन्य विषय की अवधारणाओं/दक्षताओं से भी जुड़ सकें।

बच्चों की प्रशंसा एवं प्रोत्साहन संबंधी बातों का जिक्र अवश्य होना चाहिए। इसे योजना में अवश्य अंकित करें। इसके अन्तर्गत बच्चों के कार्य एवं अभिव्यक्ति की सराहना, उन्हें अवसर प्रदान करना, सहयोग हेतु प्रेरित करना, उनके कार्य में न्यूनतम हस्तक्षेप एवं पूर्ण स्वतंत्रता, उनकी मातृभाषा का सम्मान, अनुभव का सम्मान आदि विभिन्न तथ्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हम प्रारंभिक कक्षा के विभिन्न विषयों के शिक्षण को रोचक एवं प्रभावी बना सकते हैं। भाषा, गणित, पर्यावरण अध्ययन, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान इन सभी विषयों के सीखने–सिखाने में कला के विभिन्न स्वरूपों को शामिल किया जा सकता है।

गतिविधि –

पाठ्यपुस्तक पर आधारित कला अनुभव पर पाठ योजना बनाएं और उसका क्रियान्वयन कक्षा में करें।

पाठयोजना के क्रियान्वयन के दौरान बच्चों ने क्या–क्या सीखा और उनकी भागीदारी कैसी रही, इस पर एक प्रतिवेदन बना कर अपनी कक्षा में छात्र अध्यापकों के साथ चर्चा करें।

1.5 कला शिक्षा एवं शिक्षक–शिक्षा (Art Experience and Teacher Education) -

शिक्षक बच्चों के प्रारंभिक जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अभिभावकों के बाद शिक्षक ही वह वयस्क व्यक्ति होता है जिससे बच्चा अपनी उम्र के प्रारंभिक वर्षों में मिलना–जुलना शुरू करता है (लगभग 3 वर्ष में और उसके पश्चात्) और इसी दौर में बच्चों के सीखने और उसके व्यवहार से वह आधार तैयार होता है जिससे वह अपने भविष्य की नींव रखता है। जब हम पाठ्यचर्या में बच्चे के व्यक्तित्व की चर्चा करते है तब यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि हम शिक्षक के व्यक्तित्व और शिक्षकों की क्षमता निर्माण पर नजर डालें।

NCF-2005 के अनुसार शिक्षक–शिक्षा और देश के शिक्षकों की क्षमता विकास की प्रक्रिया को पूर्ण रूप से बदलने की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षक ही वह मुख्य व्यक्ति होता है जो पाठ्यक्रम को कक्षा में बच्चों तक पहुँचाता है।

पूर्व–प्राथमिक और प्राथमिक स्तर पर कला शिक्षा की पाठ्यचर्या अन्य विषयों के अध्यापन से गहराई से जुड़ी होती है इसलिए कला शिक्षा को पूर्व–सेवा और अंतःसेवा के स्तर पर शिक्षक शिक्षा और प्रशिक्षण का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर अधिकतर विद्यालयों में एक ही शिक्षक पढ़ाता है इसलिए शिक्षक को शिक्षण–अधिगम में दृश्य और प्रदर्शन कलाओं की विभिन्न विधियों का प्रयोग करते हुए नवाचारी और सृजनात्मक होना चाहिए। कक्षा में शिक्षकों को स्वयं इतना सृजनशील होने की आवश्यकता है जिससे कि वह विद्यार्थियों को अधिक सृजनशील बनने की प्रेरणा दे सकें। कला के ऐसे विद्यार्थियों की जरूरत है जो शिक्षण को एक पेशे की तरह अपना लेने में रूचि रखते हों और उनके लिए कला शिक्षा में शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था हो, जहाँ वे विभिन्न शिक्षण–शास्त्रों, विधियों, शिक्षण–अधिगम और मूल्यांकन की पद्धति सीख सकें।

1960 के दशक के परवर्ती वर्षों में भोपाल और अजमेर में स्थित क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में चित्रकला और औद्योगिक हस्तशिल्प के एक व दो साल के पाठ्यक्रम शुरू किए थे जिन्हें बाद में बंद कर दिया गया। आज के समय में दृश्य और प्रदर्शन कलाओं संबंधी पेशों का दायरा बढ़ रहा है अतः कला शिक्षा माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर अधिक से अधिक विद्यालयों में होनी चाहिए जहाँ ज्यादा कला शिक्षकों की ज़रूरत होगी। प्रायः देखा गया है कि विद्यालयों में जो कलाकार शिक्षक होते हैं वे विद्यार्थियों को सृजनात्मक और मौलिक बनाने के स्थान पर अंतिम उत्पाद बनाने पर महत्व देते हैं। इस संबंध में यहाँ पर NCF-2005 आधार पत्र समूह के तीन मुख्य सुझाव हैं :–

- विभिन्न स्तरों पर शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रमों में कला शिक्षा के विभिन्न घटकों को बढ़ाया जाए।
- कार्यरत शिक्षकों के लिए गहन शिक्षक–उन्मुखीकरण कार्यक्रम कराए जाएँ।
- शिक्षक बनने से पूर्व दृश्य या प्रदर्शनकारी कलाओं में व्यावसायिक डिग्री/डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद कला शिक्षा के अध्यापकों के लिए एक साल के पाठ्यक्रम का विकास किया जाए।

विभिन्न स्तरों पर शिक्षक–शिक्षा कार्यक्रम में कला शिक्षा को बढ़ाने के लिए समूह के निम्न सुझाव है :–

- उच्च माध्यमिक स्तर के बाद दो साल का प्रशिक्षण कार्यक्रम विद्यार्थी को इस योग्य बनाता है कि वह प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण के योग्य हो सके लेकिन कला जैसे विषय के लिए यह समय अपर्याप्त है इसलिए सप्ताह में दो या तीन बार स्रोत–शिक्षक को प्राथमिक स्तर की कक्षाओं हेतु विद्यालय में बुलाया जाना चाहिए।
- प्राथमिक विद्यालय के शिक्षक के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह विषय की अवधारणाओं को पढ़ाने के लिए कला की विधाओं का प्रयोग करें। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक–शिक्षा को उस

तरह से रचा जाए कि शिक्षिका/शिक्षक स्वयं चित्रकारी, पेपर कटिंग, मुखौटा निर्माण, भूमिका प्रदर्शन, अभिनय, गायन, वादन, शरीर संचालन, चेहरे की भाव–भंगिमाएँ इत्यादि को सृजनात्मक और नवाचारी तरीके से प्रयोग में ला सकें। ये दृश्य और प्रदर्शन कलाओं के वे उपकरण हैं जिनका प्राथमिक शिक्षक को कक्षा में प्रयोग करना चाहिए।

- उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के लिए शिक्षक–शिक्षा के पाठ्यक्रम में कला–प्रशंसा, फिल्म प्रशंसा और सौंदर्यबोध को शामिल किया जाना चाहिए। शिक्षक को इतना समर्थ होना चाहिए की वह कला की विभिन्न विधाओं का प्रयोग विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय शिक्षण–उपकरण के रूप में कर सके।

प्रदत्त कार्य –

1. कला अुनभव क्या है? इसकी क्या उपयोगिता होनी चाहिए?
2. बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में कला अनुभव की क्या उपयोगिता है? उदाहरण देते हुए समझाएं?
3. कुछ ऐसे कला समेकित अनुभवों (गतिविधियों) का उदाहरण दें जिसके माध्यम से आप अपनी कक्षा में बच्चों को सक्रिय करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं?
4. कुछ ऐसे कला अनुभव गतिविधियों का उदाहरण दें जिसके माध्यम से आप अपनी कक्षा में समूह भावना को प्रोत्साहित कर सकते हैं?
5. क्या कला अनुभव के माध्यम से शिक्षक का कार्य आसान हो जाता है? क्यों या क्यों नहीं?

इकाई – 2

कला एवं संस्कृति

(Art and Calture)

2.1 परिचय

2.2 संस्कृति : अवधारणा एवं समझ

2.3 संस्कृति का महत्व

2.4 संस्कृति एवं सभ्यता

2.5 कला एवं संस्कृति

2.6 संस्कृति एवं शिक्षा

2.7 कला व संस्कृति का संरक्षण व संवर्धन

2.1 परिचय

पिछली कक्षाओं में कला व कला शिक्षा पर अपनी समझ बनाते हुए हमने जाना कि मनुष्य में निहित सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति कला है। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी कला का अपना विशेष महत्व है। समाज में विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से कला की शिक्षा निरन्तर चलती रहती है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही सभ्यता व संस्कृतियों के वाहक के रूप में कला की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

यदि देखा जाये तो कला और शिल्प की शिक्षा शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व के विकास का उपयोगी माध्यम हो सकती है। व्यक्तित्व और सौन्दर्यबोध के विकास, प्रवृत्तियों और मूल्यों के निर्माण में कला का प्रत्यक्ष योगदान है। इसका उपयोग विद्यालय की शैक्षिक प्रक्रियाओं को रोचक बनाने में कारगर सिद्ध होता है। शिक्षाशास्त्रीय उद्देश्यों को पूर्ण करने में कला, शिल्प और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका है। संसाधन के रूप में, माध्यम के रूप में और विकसित किए जाने वाले कौशल के रूप में भी।

इस इकाई में हम कला और संस्कृति से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे।

2.2 संस्कृति : अवधारणा एवं समझ (Cultre : Concepet and Understanding) -

संस्कृति शब्द सम् + कृ + ति से बना है, जिसका अर्थ है अच्छी तरह से निर्मित किया हुआ। अच्छे से संस्कारित किया हुआ। संस्कृति विचार, भावना, प्रथाओं, संस्कारों और ज्ञान का एक ऐसा समन्वित रूप है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होता है।

संस्कृति संस्कारों से जुड़ी है, यह किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो सकती है। अतः संस्कृति 'सीखा हुआ व्यवहार है'', यह प्रकृति से मनुष्य को मिला व्यवहार नहीं है। लापीयर (Lapiere, Socilogy) के अनुसार – ''संस्कृति पीढ़ियों से प्राप्त किसी सामाजिक समूह की शिक्षा है जो रीति–रिवाजों, परम्पराओं आदि में अभिव्यक्त होती है।'' संस्कृति किसी भी देश और समाज की पहचान है। संस्कृति के आधार पर ही किसी राष्ट्र की गरिमा आंकी जा सकती है। इसमें जीवन–मूल्य, धर्म, दर्शन, कला, शिक्षा, साहित्य, आचार–विचार, आस्था–विश्वास आदि सभी कुछ सम्मिलित हैं।

संस्कृति पर अब तक की गई चर्चा के अनुक्रम में संस्कृति की आधारभूत विशेषताएँ इस प्रकार हो सकती हैं :–

- संस्कृति में समूह के आदर्शों नियमों एवं विचारों का समावेश होता है।
- संस्कृति सम्पूर्ण सामाजिक विरासत है। इसमें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को परम्पराओं एवं प्रथाओं का हस्तान्तरण होता रहता है।
- संस्कृति मनुष्य की व्यक्तिगत विरासत नहीं अपितु सामाजिक विरासत होती है।
- भाषा संस्कृति की वाहक है। भाषा से अतीत में सीखे गए व्यवहार का हस्तांतरण होता है।
- संस्कृति प्राकृतिक नहीं होती। समाजीकरण, आदतों एवं विचारों द्वारा सीखे गए लक्षणों को संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति सीखी जाती है।

संस्कृति की विशेषताएँ जानने के बाद संस्कृति के महत्व पर नजर डालें।

2.3 संस्कृति का महत्व (The Importance of Culture) –

संस्कृति का महत्व व्यक्ति के लिए भी है और समूह के लिए भी।

व्यक्ति के लिए संस्कृति का महत्व –

प्रायः संस्कृति सामाजिक सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। यह मनुष्य को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप रखने में मदद करती है। उदाहरण के लिए – बड़ों का सम्मान, बच्चों की देखभाल या फिर सामाजिक नियमों का पालन जैसे – यातायात के नियम, खेल के नियम आदि। संस्कृति व्यक्ति के आचरण को नियमित करती है। उसे समाज में रहने के योग्य बनाती है। सामाजिक जीवन व्यतीत करने हेतु अपेक्षित गुणों को मनुष्य अपनी संस्कृति से प्राप्त करता हैं, जैसे – उसे कैसा भोजन करना चाहिए, उसे दूसरों के साथ कैसे और कब सहयोग अथवा प्रतियोगिता करनी चाहिए आदि।

गतिविधि –
''संस्कृति व्यक्ति के आचरण को नियमित करती है'', छात्र अध्यापक इस विषय पर संक्षिप्त नोट बना कर आपस में चर्चा करें। चर्चा से निकले मुख्य बिन्दुओं को बुलेटिन बोर्ड पर लगाएँ।

समूह के लिए संस्कृति का महत्व :–

- संस्कृति सामाजिक व्यवस्था व संबंधों को स्थिर बनाए रखती है। यह मूल्यों और आदर्शों की स्थापना करती है। लोगों के व्यवहार को नियमित करती है। तर्कहीन मर्यादाहीन आचरण पर यह रोक लगाती है। समूह की एकता उसकी संस्कृति पर ही निर्भर है।
- संस्कृति व्यक्ति के दृष्टिकोण को विस्तृत करती है। यह व्यक्ति को परिवार, राज्य एवं राष्ट्र की अवधाराणाओं से परिचित कराती है।
- यह व्यक्ति में सामाजिक भावना उत्पन्न करती है।
- समूह के सदस्यों में यद्यपि समानता पाई जाती है तथापि वे जीवन की उत्तम वस्तुओं एवं श्रेष्ठ परिस्थिति को प्राप्त करने हेतु निरन्तर प्रतियोगिता में रहते हैं। इस प्रतियोगिता में संस्कृति उनको सीमाओं में रखती है।

वस्तुतः यदि सांस्कृतिक विनियम न होते तो मनुष्य का जीवन एकाकी एवं क्षुद्र होता।

2.4 संस्कृति एवं सभ्यता (Culture and Civiliazation) –

संस्कृति व सभ्यता के बारे में विचार करें तो हम पाते हैं कि संस्कृति और सभ्यता में अन्तर है। सभ्यता मनुष्य के भौतिक विकास के साथ–साथ परिवर्तित होती रहती है। मनुष्य की भौतिक प्रगति का लक्ष्य यह रहा

कि वह जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता और सुगमता से कर सकें। मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति करता चला जा रहा है। इस प्रकार समस्त भौतिक विकास का समावेश सभ्यता के अन्तर्गत ही होता है।

संस्कृति किसी वस्तु के लिए साधन नहीं, वह स्वयं साध्य है। संस्कृति से सभ्यता की तुलना करें तो सभ्यता साधन है, स्वयं साध्य नहीं है। रेडियो, टेलीविजन सभ्यता के सूचक हैं। ये सभी साधन हैं। ये हमारे विचारों को संसार तक पहुँचाने में उपयोगी हैं। रेडियो या टेलीविजन से जो विचार व्यक्त किए जाते हैं वे संस्कृति के सूचक हैं, आन्तरिक हैं, साध्य हैं। इनकी उपयोगिता, अनुपयोगिता की जाँच नहीं होती अपितु इनका तो सांस्कृतिक पैमाने से मूल्य आँका जाता है। इस प्रकार सभ्यता अपेक्षाकृत शीघ्र परिवर्तित होती रहती है, जबकि संस्कृति आत्मोन्नति का प्रतिफल है। किसी भी देश की संस्कृति के प्रमुख अंग वहाँ का साहित्य, धार्मिक एवं कलात्मक सृजन का इतिहास होता है। इन तीनों क्षेत्रों का सम्मिलित रूप वहाँ की संस्कृति के निर्धारण का आधार बनता है।

गतिविधि – छात्र–अध्यापक आस–पास के विद्यालयों का सर्वे कर रिपोर्ट बनाएं कि उन विद्यालयों में कला व संस्कृति संबंधी कौन–कौन से आयोजन किए जाते हैं? इनसे विद्यार्थियों को क्या लाभ होता हैं?

2.5 कला एवं संस्कृति (Art and Culture) –

कला किसी भी विचार और कल्पना का मूर्तरूप है। कला में लोक संस्कृति समाहित होती हैं। भारतीय कला व संस्कृति की बात करें तो ऐलोरा के गुफा चित्र, मूर्तियाँ, भित्ति चित्र, खजुराहो का शिल्प, कोणार्क का विश्व प्रसिद्ध सूर्य मंदिर, जंतर–मंतर, ताजमहल, अशोक स्तम्भ, देश के विभिन्न भागों में बिखरें प्राचीन अवशेष, स्तम्भ एवं अन्य ऐतिहासिक इमारतें एवं अन्य संरचनाएं हमारे देश की सांस्कृतिक सम्पदा मानी जाती हैं। लोक गीत, संगीत, त्यौहार, रहन–सहन, खान–पान, मेले, अनुष्ठान, आचार–व्यवहार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। भारत विभिन्नताओं का देश है फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से आज तक बना हुआ है। इसके विभिन्न राज्यों की अपनी–अपनी भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं।

छत्तीसगढ़ की अपनी विशेष संस्कृति है, जिसकी चर्चा कला एवं लोक संस्कृति भाग–1 में की गई है। यह एक आदिवासी बहुल राज्य है। यहाँ विभिन्न जनजातियाँ अपनी पूरी विशेषताओं के साथ विद्यमान हैं। यहाँ की प्रमुख जनजातियाँ गोंड, हल्बा, माड़िया, मुड़िया, भतरा, बैगा, कमार, कोरवा आदि हैं। इन सभी की अपनी–अपनी सांस्कृतिक विशेषताएं हैं। छत्तीसगढ़ का जनजीवन संगीत व नृत्य प्रिय है। इस संस्कृति में छप्पन भोग की विशिष्ट परम्परा है। देवी देवताओं को प्रसाद चढ़ाने से लेकर तीज–त्यौहारों व विभिन्न अवसरों पर पकवान बनाने की परम्परा छत्तीसगढ़ में है। वैवाहिक संस्कारों में कुंवर कलेवा, पठौनी भात इस बात के प्रतीक हैं। सामूहिक भोजन में लड्डू, बरा, सोहारी, छत्तीसगढ़ की संस्कृति में शामिल है। यह मिल–जुल कर रहने की परम्परा का प्रतीक है।

गतिविधि –

1. आप छत्तीसगढ़ के प्रमुख पकवानों के नामों की सूची बनाएं तथा यह पता लगा कर लिखे कि वे किन अवसरों पर बनाएं जाते हैं।
2. छत्तीसगढ़ में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों की सूची बनाते हुए पता कर लिखें कि ये किस अँचल में बोली जाती है।

2.6 संस्कृति एवं शिक्षा (Culture and Education) –

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन एवं वैभव शाली संस्कृति है। शिक्षा के सन्दर्भ में इसके कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं –

- **उच्च मानवीय मूल्यों को प्रश्रय देना –** हमारी भारतीय संस्कृति उच्च मानवीय मूल्यों को प्रमुखता देती है। जो समस्त मानव जाति के लिए कल्याणकारी है। मूल्यों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हस्तान्तरण शिक्षा व्यवस्था के द्वारा भी किया जाता है।
- **यह कर्म प्रधान संस्कृति है –** भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति है। शिक्षा में भी कर्म, कौशल को प्रमुखता दी गई है। हमारी संस्कृति का यह महत्वपूर्ण बिन्दु है कि श्रेष्ठ कार्यों का परिणाम भी श्रेष्ठ होगा। व्यक्ति व राष्ट्र के विकास के लिए अधिकाधिक उच्च आदर्शों को आधार मान कर कर्म करना एवं श्रम के प्रति निष्ठावान बने रहना शिक्षा का सर्वकालिक लक्ष्य है।
- **धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में सामजंस्य –** धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में सामंजस्य स्थापित कर उच्च मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करना वर्तमान में शिक्षा का एक उद्देश्य है। संस्कृति इसमें सहायता करती हैं।
- **महान व्यक्तित्व के आदर्श –** हमारी संस्कृति की विशेषता है कि यह महान व्यक्तित्वों के आदर्शो का अनुसरण करती हैं जिससे वर्तमान में भी उच्च आदर्शों की स्थापना होती रहे। सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक प्रत्येक क्षेत्र के प्रतिष्ठित चरित्र इस राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर है। शिक्षा में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है।
- **मानवतावाद –** भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को मानती है। यह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का पालन करती है। मानव की गरिमा का सम्मान शिक्षा का प्रमुख ध्येय है।

अतः संस्कृति, कला और शिक्षा एक दूसरे में समाहित है। इन्हें साथ रख कर कक्षा शिक्षण को प्रभावी व सहज बनाया जा सकता है।

गतिविधि –

किसी एक कलाकार (संगीत, गीत, साहित्य, नृत्य, शिल्प, फिल्म, खेल एवं अन्य किसी क्षेत्र) का उदाहरण देकर स्पष्ट करें कि कला एवं संस्कृति विभिन्न देशों के मध्य संबंधों को मजबूती प्रदान करती है।

हम शिक्षा में संस्कृति व कला के महत्व पर प्रसंगवश पुनः नजर डालें –

- कला व संस्कृति विचारों की शुद्धता का बोध कराती है।
- कला व संस्कृति अवचेतन मन की दमित इच्छाओं को बाहर फेंकने का अवसर प्रदान करती है।
- कला के द्वारा देश की सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण, संवर्धन एवं विकास होता है।
- कला व संस्कृति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के मध्य संवाद (सम्प्रेषण) स्थापित करती हैं।
- जैसा कि पूर्व में भी वर्णित किया गया है कि कला अन्य विषयों से सह संबंध स्थापित करती है तथा सृजनात्मक विकास करती है। पाठ्य–पुस्तकों में बने रेखाचित्रों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन, सर्वेक्षण, प्रतिशत, मात्रा आदि से शिक्षण सुगम व सहज हो जाता है।

गतिविधि – कला और संस्कृति हमें शांति व एकता के सूत्र में बांधती है। इस विषय पर अपने विचार लिख कर कक्षा में चर्चा करें।

2.7 कला एवं संस्कृति का संरक्षण व संवर्धन –

हमारी कलात्मक व सांस्कृतिक विरासत सांस्कृतिक नवीकरण के साथ–साथ ऐतिहासिक समझ एवं इनके आधार पर आगे के विकास के लिए एक संसाधन है। विभिन्न कलाओं और शिल्पों के द्वारा कलाकारों और शिल्पकारों ने समाज को समृद्ध और प्रतिबिंबत किया हैं। समकालीन समाज को ये नवाचार की ओर ले जाते हैं और समाज में सार्थक परिवर्तन लाते हैं। अतः समाज अपने विभिन्न संगठनों के द्वारा रचनात्मक उपलब्धियों एवं संरक्षण को बढ़ावा देता है। कला व संस्कृति के संवर्धन के लिए कला संगठनों, कला संग्रहालयों, अनुसंधान संस्थानों, संरक्षण केन्द्रों को बढ़ावा दिया जाता है। परन्तु संस्कृति को अक्षुण बनाए रखने के लिए एवं बच्चों में कला व संस्कृति के प्रति अभिरूचि व निष्ठा उत्पन्न करने का कार्य शिक्षकों को करना होगा। बच्चों की कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रत्येक चरण को प्रोत्साहित करने में शिक्षक का उचित मार्गदर्शन बच्चों को निरन्तर मिलना चाहिए।

इसके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं –

सबसे पहले विद्यालय में, लाइब्रेरी में, कक्षाओं में कला और संस्कृति से संबंधित कुछ अच्छे चित्र, मूर्तियाँ, शिल्प तथा दस्तकारी संबंधी कृतियाँ सजा कर रखनी होंगी। इनकी फोटो या नकल भी रखी जा सकती है। बच्चों को फिल्मों, नाटकों, लघु चित्रों के माध्यम से विभिन्न राज्यों, देशों की चुनी हुई कलाकृतियों से परिचित करवाना होगा। प्रकृति व संस्कृति के निकट सम्पर्क में बच्चे को लाना होगा। इस उद्देश्य से हर ऋतु में विशेष उत्सवों का आयोजन करना उचित सिद्ध हो सकता है। ऋतु विशेष से संबंधित फूलों, फसलों, व्रत, त्यौहारों की चर्चा कक्षाओं में, स्कूलों में की जा सकती है। ऋतु संबंधी उपयुक्त वेशभूषा एवं खेलकूद का आयोजन विद्यालय में किया जाना अच्छा प्रयास होगा। इससे विद्यार्थियों की प्रकृति व संस्कृति के साथ घनिष्ठता बढ़ेगी।

वर्ष में किसी भी समय विद्यालयों में किसी एक स्थान पर कला महोत्सव का आयोजन हो। जिसमें विद्यार्थी कोई न कोई कलाकृति बना कर प्रदर्शित करें या अपनी कला की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करें।

विद्यालयों में इस तरह के आयोजनों से अंतिम रूप में लाभ समुदाय का ही होता है। इससे समुदाय, स्कूल सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न होते हैं। इस तरह के आयोजनों से विद्यार्थियों को विभिन्न धर्मों, विभिन्न संस्कृतियों से परिचय प्राप्त होता है साथ ही विद्यार्थियों में नैतिक व जीवन मूल्यों का विकास होता है।

कला शिक्षा के अन्तर्गत कला व संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए सभी शिक्षक कलाकार हो या शिल्पकार हो यह जरूरी नहीं है। परन्तु वे कला शिक्षा की सामान्य समझ रखते हो यह जरूरी है।

भारतीय संस्कृति एवं उनमें निहित मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए विद्यालय में कुछ गतिविधियों का आयोजन किया जाना एक सार्थक कदम है। कुछ उदाहरण यहाँ पर दिए जा रहे हैं –

- विद्यालयीन वार्षिक कैलेन्डर का विकास विद्यालय में किया जाए। वर्ष भर आयोजित की जाने वाली जयंतियों, उत्सवों, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पर्वों एवं प्रार्थना सभा को कैलेन्डर में स्थान दिया जाना चाहिए। विद्यालयों में इस तरह की गतिविधियों के आयोजन का उद्देश्य बच्चों में सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करना है।

इन गतिविधियों का संचालन इस प्रकार से हो कि –

- सीखने–सिखाने की प्रक्रिया प्रभावशाली बने।
- बच्चों को विभिन्न धर्मों व संस्कृतियों का बोध हो। उनमें विभिन्न संस्कृतियों के प्रति प्रतिबद्धता विकसित हो।
- बच्चों में सृजनात्मकता, चिन्तन, संवेदनशीलता आदि गुणों का विकास हो।

- बच्चे अपनी संस्कृति में निहित जीवन मूल्यों को आत्मसात करें एवं उनमें नागरिक गुणों का विकास हो।

प्रदत्त कार्य –

आप अपने आस–पास के किन्हीं दो विद्यालयों के विद्यालयीन वार्षिक कैलेन्डर का अध्ययन करें एवं अपने विद्यालय के लिए एक वार्षिक कैलेन्डर तैयार करें, जिनमें विद्यालयों में वर्ष भर मनाए जाने वाले पर्वों, जयंतियों का उल्लेख हो। इस गतिविधि से बच्चों व समुदाय को क्या लाभ होगा, लिखें एवं कक्षा में इसकी चर्चा करें।

इकाई – 3

कला का इतिहास – भारतीय कला के संदर्भ में

(History of Art - In the Context of Indian Art)

3.1 परिचय

3.2 सैन्धव सभ्यता से कला : एक दृष्टि

3.2.1 मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला

3.3 समकालीन कलाएँ व शिल्पकार

3.3.1 संगीत

3.3.2 संगीत : गायन एवं वादन

3.3.3 वाद्य

3.3.4 नृत्य

3.3.5 नाट्य

3.4 भारतीय चित्रकला की कहानी

3.1 परिचय

भारतीय संस्कृति प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक युग तक अनेकता में एकता का इतिहास है। पिछले अध्याय में हमने कला, संस्कृति व सभ्यता के आपसी संबंधों एवं महत्व पर चर्चा की। इनकी शैक्षिक उपयोगिता देखी।

कला भारतीय संस्कृति का दर्पण है। भारतीय कला के उद्‌भव एवं क्रमिक विकास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि प्रागैतिहासिक युग से ही इसका आरंभ है।

3.2 सैन्धव सभ्यता से कला : एक दृष्टि –

आपने इतिहास में पढ़ा है सिन्धु घाटी की सभ्यता के अन्तर्गत हड़प्पा व मोहनजोदड़ो नामक दो विशाल नगरों के अवशेष मिलें है। यहाँ से कला की विशेषताएं इतिहास विषय में पढ़ी जा सकती हैं। यहाँ हम ऐतिहासिक संदर्भ में मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला पर चर्चा करेंगे।

3.2.1 मूर्तिकला एवं स्थापत्य –

सैन्धव युग में मूर्तिकला के पर्याप्त साक्ष्य हैं। मूर्तियाँ सिद्ध करती है कि शिल्पी काफी दक्ष थे। पाषण की एक मूर्ति नृत्य मुद्रा में उपलब्ध है। मातृदेवी की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। मोहन जोदड़ो में उपलब्ध नर्तकी की मूर्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि नृत्यकला में चिर अभ्यस्त किसी नर्तकों की मूर्ति है।

मौर्य कला – मौर्य युग में यक्ष–यक्षिणियों, देवी–देविताओं पशु–पक्षियों एवं मनुष्यों की आकृतियाँ बनाई गई हैं। यक्ष–यक्षिणियों की मूर्तियों में सिर पर पगड़ी, कन्धों व भुआजों पर उत्तरीय और नीचे धोती है। नगर नियोजन, स्तूप, चैत्य, निर्माण, वेदिका, स्तम्भ निर्माण इस काल की विशेषता है।

गुप्तकाल अभूतपूर्व सर्जना का युग था। इसके प्रमुख मंदिर भूमरा का शिव मंदिर, तिगवा का मंदिर (मध्यप्रदेश), साँची, बोधगया आदि हैं। चितौड़, मंदसौर में स्थित सूर्य मंदिर भव्यता के उदाहरण हैं। मंदिरों

में गर्भगृह, प्रदक्षिणा पथ, मण्डप और शिखर होता है। गर्भगृह में देवता की मूर्ति स्थापित की जाती है। गुप्त काल में मूर्तिकला का अप्रतिम विकास हुआ है। स्कन्दगुप्त के समय विष्णु की मूर्ति बनाई गयी है। विष्णु की चतुर्भजी मूर्ति में सिर पर मुकुट, गले में हार, कानों में कुण्डल हैं। इस तरह सारनाथ स्थित बुद्ध की मूर्ति नचना देवगढ़ की विष्णु प्रतिमा, वराह प्रतिमा, सूर्य मूर्ति, गुप्तकालीन कला के उदाहरण हैं। गुप्तकालीन कला भारतीय संस्कृति की कलात्मक स्वर्णिम अभिव्यक्ति है। यह वह युग है, जब साहित्य, राजनीति, धर्म, कला, अर्थ सभी क्षेत्रों में मानदण्ड स्थापित हुए। औरंगाबाद के निकट स्थित अजन्ता के विश्व विख्यात, गुहा चित्र भारतीय व विश्व कला की श्रेष्ठ कृतियों के उदाहरण हैं। यहाँ महात्मा बुद्ध की विभिन्न मूर्तियाँ हैं। पुष्प, पत्तियों, पशु एवं पक्षियों का चित्रण दर्शनीय हैं। अजन्ता की चित्रकला में बुद्ध, जातकों के दृश्य, गन्धर्व, अप्सरा के भावपूर्ण दृश्य हैं। इनमें रंगो का प्रयोग समुचित ढंग से किया गया है। भित्ति चित्रों में सफेद, लाल, हरा एवं नीला रंग प्रयुक्त है। आवश्यकतानुसार गहरे और हल्के रंग का प्रयोग किया गया है।

खजुराहो की मूर्तिकला – खजुराहो मंदिर निर्णाण कला के कारण प्रसिद्ध है। इस समय मध्यप्रदेश के उत्तरी भू–भाग में चन्देल शासकों के राज्य थे। चन्देल काल के समय के खजुराहों, महोबा, कालिंजर प्रमुख हैं। चन्देल मूर्तिकला पर बिहार, बंगाल, ओडिशा, राजस्थान की कला शैलियों का प्रभाव है।

दक्षिण भारत में चालुक्य, पल्लव एवं पांडव राजाओं ने मंदिर निर्माण की परम्परा को आगे बढ़ाया है। दक्षिण भारत में अधिकांशतः विष्णु व शिव के मंदिर है। महाबलीपुरम के मंदिर पत्थर से तराशे गए मंदिर है। तंजापुर का वृहदीश्वर मंदिर भारतीय संस्कृति के उदाहरण है। ऐलोरा में स्थित गुफाएं चालुक्यों एवं राष्ट्रकूतों के काल की हैं। ऐलोरा में जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म के स्थापत्य शैल स्वरूप दिखााई पड़ते हैं। मुम्बई के निकट एलीफेन्टा में पर स्थित गुफा मंदिर मूर्तियों की उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं। विजय नगर मंदिर के शिल्पियों ने कठोर पत्थर से निर्माण की तकनीक का उपयोग किया। विजयनगर, के सर्वोत्कृष्ट मंदिरों में कृष्ण देव राय द्वारा निर्मित विट्ठल स्वामी का मंदिर है। विजय नगर मंदिर के शिल्पियों ने कठोर पत्थर से निर्माण की तकनीक का उपयोग किया। विजयनगर वास्तुशैली में औसत अनुपातों के छोटे–छोटे भवन समूहों के में बनाए गए है।

मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक विकास का स्वरूप प्रथमतः 13वीं सदी से 15वीं सदी तक का है। द्वितीय मुगलकालीन भारत का स्वरूप है। मुगल शासक साहित्य व कला प्रेमी थे। अबुल फजल द्वारा लिखि अकबर नामा, मलिक महम्मद जायसी की पद्मावत एवं तुलसीदास जी द्वारा लिखि रामचरित मानस इस काल की प्रमुख कृतियाँ हैं।

मुगल कालीन स्थापत्य कला देशी व विदेशी शैलियों का मिश्रण थीं। इनमें गुम्बद व मीनारों की प्रमुखता थी। संगमरमर का बहुत प्रयोग हुआ। आगरे का लाल किला, ताजमहल, फतेहपुर सिकरी का बुलन्द दरवाजा, शेख सलीम चिश्ती का मकबरा आदि प्रमुख इमारतें हैं।

3.3 समकालीन कलाएँ व शिल्पकार (Ancient Art and Sculptors) –

समकालीन कलाएँ एवं शिल्पकार – अब हम समकालीन कलाकारों, शिल्पकारों पर एक नज़र डालें।

समकालीन चित्रकला की विषयवस्तु सामाजिक जीवन, लोकप्रिय पर्व, परम्पराएं, रीति–रिवाज इत्यादि हैं।

सामान्यतः चित्रकला के लिए पेंसिल, चारकोल, पेस्टल रंग, स्केच पेन, कलम, स्याही ब्रश आदि का प्रयोग किया जाता है। समकालीन प्रचलित चित्रकला के उदाहरण है – कलमकारी, फड़चित्र, गोंड कला, बाटिक प्रिन्ट, वर्ली–आर्ट, कलीघाट चित्रकला। रंगोली बनाने में चावल, आटा, पत्तियों, फूलों की पंखुड़ियो का प्रयोग किया जाता है।

मुगलकालीन कला – मुगलकालीन स्थापत्य कला की विशेषताएं गुम्बद, ऊँची मीनारें मेहराब हैं। मुगलकालीन विश्व में कला और जीवन में समन्वय की कमी का प्रमुख कारण औद्योगिक युग है। यंत्र युग

में वस्तुओं के निर्माण के साधन एकदम बदल गए। वस्तुएं कारीगर के हाथ से न बन कर मशीनों द्वारा हजारों की संख्या में बनने लगी। अब कला का एक और वर्गीकरण शुरू हुआ। इसमें पहला ललित कला (फाइन आर्ट) कहा जाने लगा। इसमें चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत, कविता और वास्तु कलाएँ आती हैं। दूसरा उपयोगी कला (अप्लाइड आर्ट) कहा जाने लगा। इसमें आभूषण बनाना, बर्तन बनाना, वस्त्रों को रंगना, फर्नीचर बनाना इत्यादि आता है।

फोटोग्राफी –

पहले के श्वेत श्याम फोटोग्राफी, मैन्युअल कैमरा, ऑटोमेटिक कैमरा से डिजिटल फोटोग्राफी कैमरा तक आज कितना कुछ बदल चुका है। मोबाइल में उपलब्ध कैमरे आज

सर्व सुलभ हो गए हैं।

कम्प्यूटर आर्ट –

देश विदेशों में यह कला भी समकालीन कला का ही हिस्सा है। कला के विभिन्न पक्षों को भी कम्प्यूटर के द्वारा सरल तरीके से किया जा रहा है। कम्प्यूटर कला में तकनीक का सहज उपयोग है। विभिन्न प्रकार के ग्राफिक्स चित्रों का चित्रण (Mixing), त्रिविमीय प्रभाव आदि का प्रयोग कला को और भी विशिष्टता प्रदान करता है।

शिल्प (Craft) –

विवाह, पर्व एवं सजावट हेतु मिट्टी, धातु, कागज आदि की कलाकृतियाँ तैयार की जाती हैं। भारत में स्थानीय स्तर पर निर्मित हस्तशिल्प के ये नमूने आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित कर रहे हैं। इसके अलावा सम्पूर्ण विश्व में Ceremics, Clay Art, Digital Art में भी आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर नित्य नई कलाकृतियाँ निर्मित की जा रही है।

गतिविधि –

विभिन्न कलाओं से संबंधित संस्थाओं का पता लगाएं तथा पता करें कि उन कलाओं के विकास के लिए ये सस्थाएं क्या–क्या करती हैं?

3.3.1 संगीत –

भारत की सबसे प्राचीन लोकप्रिय कला संगीत रही है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में भी संगीत पर छः अध्याय हैं। 8वीं और 9वीं शताब्दी के बीच मतंग द्वारा लिखि पुस्तक में रागों का पहली बार नामकरण हुआ एवं उन पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। 13वीं शताब्दी में सारंगदेव द्वारा रचित संगीत–रत्नाकर में 264 रंगों का वर्णन है। मध्यकाल में भारतीय शास्त्रीय संगीत दो परम्पराओं थी – हिन्दुस्तानी शास्त्रीय और कर्नाटक संगीत। संगीत की उत्पत्ति का काल दिल्ली सल्तनत और अमीर खुसरों (सन् 1233–1325 ई.) तक का माना जा सकता है।

ध्रुपद, ठुमरी, ख्याल, टप्पा आदि शास्त्रीय संगीत की अलग–अलग विधाएँ हैं। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के संगीतज्ञ किसी घराने या किसी विशिष्ट संगीत विधा से संबंधित होते हैं।

घराना संगीतज्ञों की वंशानुत सम्बद्धता से जुड़ा शब्द है जो किसी खास संगीत की ओर इंगित करता है तथा अन्य रागों से विभिन्नता प्रदर्शित करता है। घराना, गुरू–शिष्य परम्परा से निर्धारित होते हैं। अर्थात एक गुरू से संगीत की शिक्षा प्राप्त शिष्य समान घराने के कहलाते हैं। कर्नाटक संगीत की रचना का श्रेय सामूहिक रूप से श्याम शास्त्री, श्याम राज और मुत्थुस्वामी को दिया जाता है। महावैद्यनाथ अय्यर, सुब्रह्मण्यम आयंगर आदि महत्वपूर्ण संगीतज्ञ हैं।

3.3.2 संगीत : गायन एवं वादन –

गायन का संबंध नाभि व कंठ से है। वादन का संबंध यंत्र से है। वर्तमान में गायन शास्त्रीय, सुगम लोक संगीत के रूप में विकसित हो रहा है।

वादन – एकल वादन (सोलो), वृन्दवादन (ऑरकेस्ट्रा), अनुगामी वादन संगत तीनों रूपों में विकसित हो रहा है। भारतीय संगीत के मुख्य दो प्रकार हैं, शास्त्रीय संगीत और भाव संगीत।

शास्त्रीय संगीत – इस प्रकार के संगीत में नियमित शास्त्र होता है। जिसमें कुछ खास नियमों का पालन करना होता है। जैसे – राग, लय, ताल की सीमा आदि।

भाव संगीत – भाव गीत का मुख्य उद्देश्य गीता गाना और भावों में बह जाना है। इसमें शास्त्रीय संगीत की तरह न कोई बन्धन होता है और न ही उसका नियमित शास्त्र होता है। भाव संगीत में कहीं–कहीं शास्त्रीय संगीत का सहारा भी ले लिया जाता है। चित्रपट संगीत, लोक संगीत और भजन भाव संगीत के अन्तर्गत आते हैं। प्रारंभिक स्तर पर कक्षा में उन गीतों, वाद्यों की चर्चा की जा सकती है जो हमारे आस–पास स्थित हैं। जिसकी शुरूआत माँ की लोरी, बाल गीत, खेल गीत, लोकगीत, सार्थक फिल्मी गीतों से होती है। अगर प्रशिक्षार्थी और शिक्षक बच्चों की मदद से इस तरह के गीतों को इकट्ठा करें और समयानुसार मिल कर गाएं तो बच्चे सहजता से इसमें शामिल हो कर गाना बजाना सीख जाएंगे।

गतिविधि –

प्रारंभिक स्तर पर विद्यार्थियों से अपने आस–पास के परिवेश, घर, स्कूल आदि से ऐसी सामग्रियाँ एकत्र करने को कहा जा सकता है जिनसे विभिन्न तरह की ध्वनियाँ उत्पन्न हो सकती हों। उन्हें कक्षा में ला कर बजाने को कहा जा सकता है। बच्चों को छोटे समूहों में बाँट कर उनकी क्षमतानुसार इन ध्वनियों का इस्तेमाल कर ऑकेस्ट्रा तैयार करने को कहा जा सकता है।

संगीत में ध्वनि – मधुर ध्वनियाँ जिन्हें हम सुनना चाहते हैं उनका संबंध संगीत से है। ध्वनि की उत्पत्ति कम्पन्न से होती है। वाद्य को बजाने पर कम्पन से ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

गतिविधि –

वातावरण में व्याप्त ध्वनियों को सुनें, इनमें से आनंदित करने वाली ध्वनियों को अलग करें। कक्षा में इसकी चर्चा करें।

लगातार कम्पन व नियमित आवृत्ति द्वारा उत्पन्न कर्ण प्रिय मधुर ध्वनि स्वर कहलाती है, जो मन को प्रसन्न करती है। सा.. रे.. गा.. मा.. प.. ध... नि.. ये सात स्वर हैं। स्वर, अलंकार, लय–ताल के बारे में विभिन्न पुस्तकों व समीप के संगीतकारों से जानकारी एकत्र कर आपस में चर्चा करें।

3.3.3 वाद्य –

प्रकृति से प्ररेणा पाकर मनुष्य ने वाद्यों का विकास व सृजन किया। वाद्यों की संरचना एवं वादन क्रिया के आधार पर वाद्यों को चार भागों में बांटा गया है।

सिंग बाजा, छत्तीसगढ़

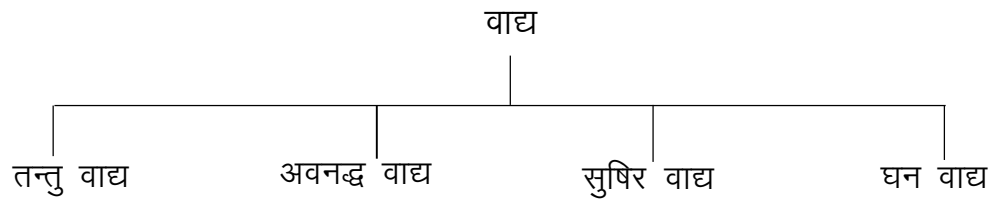

उदाहरण – वीणा, सितार, वायलिन, सारंगी आदि। इनमें एक तार के द्वारा स्वर उत्पन्न किए जा सकते हैं।	उदाहरण – ढोलक, डमरू, नगाड़ा, डफली आदि। चमड़े से मढ़े हुए यंत्र जिन पर आघात कर बजाया जाता है।	उदाहरण – शंख, बांसुरी, बीन, माऊथ आरगन। ये हवा या फूंक से बजने वाले वाद्य हैं।	उदाहरण – घुंघरू घंटा, मंजीरा, खड़ताल। इन्हें चोट या आघात के द्वारा बजाया जाता है।

गतिविधि –

आप–अपने स्थानीय क्षेत्र में निहित लोक वाद्यों की सूची तैयार कीजिए, ये किस प्रकार के वाद्य हैं, लिखिए। किसी एक वाद्य को बजाना सीखें।

3.3.4 नृत्य –

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नृत्य के जनक नटराज शिव को माना गया है। नृत्य की प्रेरणा मनुष्य को प्रकृति व जीवन से मिली है। लय, तालबद्ध शारीरिक गतियों को नृत्य कहते हैं।

ऐसा माना जाता हैं कि नाट्य शास्त्र ही भारतीय शास्त्रीय नृत्यों की प्रेरणा है। सामान्यतः नृत्य दो प्रकार के हैं – शास्त्रीय नृत्य और देशी या लोकनृत्य। शास्त्रीय नृत्य, गति, संगीत, साहित्य, दर्शन, लय, छन्द, योग एवं साधना जैसे सौन्दर्य के अनुभवों की परिणति है। समय अन्तराल में इन नृत्यों पर सांस्कृतिक क्षेत्रीय प्रभाव पड़ता गया।

कला शिक्षा एवं लोक संस्कृति भाग–1 2017 में क्षेत्रीय कलाओं एवं शिल्प की चर्चा की गई है। संगीत के समान नृत्य की भी समृद्ध शास्त्रीय परम्परा रही है। यह कहना कठिन है कि नृत्य का किस समय पर आविर्भाव हुआ, पर यह स्पष्ट है कि खुशी व आनन्द को व्यक्त करने के लिए नृत्य अस्तित्व में आया। कत्थकली, मणिपुरी, भरतनाट्यम, कत्थक, कुचीपुड़ी तथा ओडिसी कुछ भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के प्रकार हैं। प्रारंभ में शास्त्रीय नृत्य को मंदिरों तथा शाही राज दरबारों में प्रस्तुत किया जाता था। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इसका प्राथमिक स्रोत है। मुखाकृति, शारीरिक भावभंगिमाएं, हस्तमुद्रा तथा पदसंचालन सभी को तीन भागों में विभाजित करते हुए उन्हें नृत्त (पद संचालन), नृत्य (अंग संचालन) तथा नाट्य (अभिनय) की संज्ञा दी गई है।

लोकनृत्यों की नियमबद्ध परम्परा ही शास्त्रीय नृत्य है। हमारे देश के प्रमुख शास्त्रीय नृत्य हैं –

कत्थक	–	उत्तर भारत
भरतनाट्यम	–	दक्षिण भारत
मणिपुरी	–	मणिपुरी
उड़ीसी	–	ओडिशा
कुचिपुड़ी	–	आन्ध्र प्रदेश

मोहिनी अट्टम	–	केरल
सतारिया	–	झारखंड
सत्रीय	–	असम

प्रमुख लोक नृत्य –

असम	–	बिहू
बिहार	–	छऊ, विदेशिया, जाट–जटिन
गुजरात	–	गरबा
महाराष्ट्र	–	तमाशा, लावणी
पश्चिम बंगाल	–	जात्रा, जऊ नृत्य
उत्तर प्रदेश	–	रहस

गतिविधि –

आपके विद्यालय में बच्चों को शास्त्रीय नृत्य सिखाने में क्या कठिनाइयाँ आ सकती हैं ? आप इनका निराकरण कैसे करेंगे?

प्रारंभिक शिक्षा में नृत्य की शिक्षा क्यों दी जाए? इसके उत्तर के लिए हमें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 के कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच, राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र की मदद लेनी चाहिए। इसके अनुसार –

- नृत्य के माध्यम से विद्यार्थी अपने शरीर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। किस प्रकार उन्हें खड़ा होना चाहिए, सांस लेनी चाहिए, रीढ़ की हड्डी को किस प्रकार रखना चाहिए आदि।
- नृत्य तनाव को कम करता है। एकाग्रता को बढ़ाता है।
- नृत्य स्मरण शक्ति को बढ़ाने में सहायक है।
- यह एक आनन्ददायी अनुभव है।

गतिविधि –

नृत्य की प्रति बच्चों की रूचि बढ़ाने के लिए आप क्या करेंगे ?

3.3.5 नाट्य –

भरतमुनि के अनुसार नाट्य ऐसी प्रदर्शन कला है जिसमें संवाद बोलने के साथ–साथ संगीत, नृत्य, सौन्दर्यबोध भी सम्मिलित है।

इसके प्रमुख चार अंग हैं –

1. आंगिक – इसका अर्थ है शारीरिक अंग संचालन द्वारा भाव की अभिव्यक्ति करना।
2. वाचिक – संवाद अदायगी
3. आहार्य – मंच सज्जा, मेकअप आदि।
4. सात्विक – भावभंगिमा का प्रदर्शन।

गतिविधि –

किन्ही 02 प्रसिद्ध नाटकों की विभिन्न मुद्राओं के चित्रों का संकलन कर स्कूल के प्रदर्शन बोर्ड पर लगाएँ।

नाट्य की प्रमुख चर्चा कला शिक्षा एवं लोक संस्कृति भाग भी की गई है।

रंगमंच (नाटकीकरण) बहुत छोटी उम्र से बच्चों के जीवन का हिस्सा होता है। बच्चे बचपन में तरह–तरह के अभिनय करते हैं, विभिन्न जानवरों, पक्षियों की आवाजें निकालते हैं। रंगमंच वह माध्यम प्रदान करता है जिनमें एक से अधिक इन्द्रियां एक साथ सक्रिय होती हैं, जैसे – आँख, कान। रंगमंच (नाटक) की चर्चा कला शिक्षा एवं लोक संस्कृति भाग–1 में की गई है।

गतिविधि –

एक प्रचलित नाटक की प्रस्तुति कक्षा में बच्चों द्वारा कराएं एवं उसकी समीक्षा कर रिपोर्ट तैयार करें कि इस नाटक से बच्चों ने क्या–क्या सीखा।

लोक रंगमंच – यह सामाजिक उत्सवों एवं परम्पराओं में रचा बसा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के प्रभाव से इसका प्रभाव कम होने लगा है। बच्चों को क्षेत्र की नाट्य परम्पराओं के बारे में जानने व भागीदारी करने हेतु प्रोत्साहित करना होगा।

आधुनिक रंगमंच – अत्याधुनिक रंगमंच में इलेक्ट्रानिक ध्वनि और प्रकाश का सहारा लिया जाता है। इनमें कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि आधुनिक तकनीकों का उपयोग भी किया जाता है। संप्रेषण, वस्त्रविन्यास, प्रदर्शन का स्वरूप भी बदला है। नुक्कड़ नाटक, एकांकी, मूकाभिनय, एकल अभिनय, इंप्रावाइजेशन अभिनय एवं कला प्रस्तुति इस के विकसित स्वरूप हैं। नाट्य की चर्चा कला शिक्षा एवं लोक संस्कृति भाग–1 में की गई है।

गतिविधि –

1. शिक्षण में नाटक के समावेश से सीखने–सिखाने की प्रक्रिया सहज और आनन्ददायी होती है ? यदि हाँ तो किसी एक उदाहरण से समझाएं।
2. आप अपनी कक्षा में कलाबोध का निर्माण करने के लिए कौन–कौन से तरीके अपना सकते हैं?

3.4 Hkkjrh; fp=dyk dh dgkuh (Story of Indian Drwing) –

यहाँ माणिक बालावलकर के लेख भारतीय चित्रकला की कहानी प्रस्तुत की जा रही है।

भारत के किसी भी गांव की सुबह देखें– प्रसन्न वातावरण में पुताई किया हुआ आंगन, उसमें बनाई हुई सफेद रंगोली और उसमें शुभसूचित करने वाला हल्दी–कुमकुम का तिलक लगभग हर दिन का स्वागत ऐसे ही रंगों और रेखाओं से होता है। रंगोली की इन रेखाओं से यह घर या आंगन किस प्रदेश का है, यह आप बता सकते हैं। कैसे? रेखाओं के लयदार बल से और उनसे बनते आकारों से। यह महाराष्ट्र की रंगोली है, बंगाल की अल्पना है, दक्षिण की कोलम या राजस्थान का मंडल है यह आप बता सकते हैं। इस नजाकत भरी रंगोली का आस्वाद लेकर आगे बढ़ें तो छोटी–सी सीढ़ियों के पार घर का दरवाजा दिखता है। इस लकड़ी के दरवाजे की चौखट पर भी कुछ–न–कुछ नक्काशी देखने को मिलती है। इस नक्काशीदार दरवाजे को लांघकर घर में झांके तो पता चलता है, घर कितना भी छोटा और सादा हो, उसमें जगह–जगह कला के नमूने दिखाई देते हैं। घर के पुराने बर्तन, दीए, लकड़ी की अलमारियां और ऐसी कई चीजों पर पारंपरिक कारीगरी के निशान बने होते हैं।

एक वक्त ऐसा था कि सर्वसामान्य मनुष्य का जीवनमान भी सौंदर्य से स्पर्शित था। हमारे त्यौहारों

की विधि और उनसे संबंधित रंगसंगति इसकी साक्षी है। भारत के विभिन्न जातियों में 'जीवती' यानी मातृ देवता की पूजा होती है। अलग–अलग प्रदेशों में नाग, हाथी, शेर आदि प्राणियों की भी पूजा होती है। इस पूजा के बहाने घर की औरतें दीवारों पर चित्र बनाती हैं। कई जगहों पर लोग अपना घर ऐसे ही चित्रों से सजाते हैं। इतना ही नहीं, नवजात शिशु के जन्म और घर में किसी की मृत्यु जैसे प्रसंगों पर भी चित्र बनाने की प्रथा है। रंगोली हो या ऐसे चित्र, भारतवासियों के लिए ये केवल चित्र नहीं हैं। उनके लिए यह जन्म से मृत्यु तक जीवन की अनंत भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

चित्रकला का उद्‌गम कैसे हुआ, इसकी एक कथा भारतीय पुराणों में लिखी हुई है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 35 वें अध्याय के प्रारंभ में यह कथा है। एक बार नारायण ऋषि तप के लिए बैठे थे। इंद्रदेव ने अपनी सारी अप्सराओं को उनकी तपस्या भंग करने के लिए भेज दिया, किन्तु ऋषि ने उन अप्सराओं को देखकर, उन पर मोहित होने की बजाय अमृतरस से उर्वी पर, यानी जमीन पर, एक लावण्यवती का चित्र बनाया। यही लावण्यवती यानी उर्वशी थी। ऋषि ने इस चित्र में प्राणों की स्थापना की और वह चित्र जीवित हो गया। ऋषिवर द्वारा निर्मित इस सुंदर अप्सरा को देखकर इंद्र की सारी अप्सराएं शर्मिंदा होकर वहां से चली गईं। इसके पश्चात नारायण ऋषि ने चित्र का शास्त्र तैयार कर उसे विश्वकर्मा को सिखाया। और यहीं से चित्रकला का जन्म हुआ।

हम अपने आस–पास अनेक चित्र देखते हैं – कभी घरों में, कभी मंदिरों में, कभी कार्यालयों में और कभी कला–दीर्घाओं में। आपको कौन–सा चित्र पसंद आता है? अगर हम यह सवाल पूछें तो आपमें से हर एक का जवाब अलग–अलग होगा। किसी को पशु–पंछियों के चित्र पसंद आएंगे, किसी को इंसानों के, किसी को सिर्फ पेड़–पौधों के चित्र अच्छे लगेंगे। कोई कहेगा, मुझे वस्तु–चित्र या संकल्प–चित्र पसंद हैं। चित्र अच्छा लगता है इसका मतलब क्या होता है? चित्र का विषय, आकार, रंग, रेखाओं से परिपूर्ण बना हुआ चित्र अच्छा लगता है। फिर भी इस अच्छा लगने का मतलब क्या होता है? किसी चित्र का विषय बहुत अच्छा है पर उसकी रेखाएं और आकार अच्छे न हों तो क्या होगा? विषय ठीक से समझ में आएगा नहीं और फिर चित्र ज्यादा अच्छा नहीं लगेगा। और हम केवल 'चित्र ठीक है', ऐसी टिप्पणी कर छोड़ देंगे। इसका मतलब है कि चित्र में आवश्यक हर घटक ठीक से चित्रित किया गया हो तो ही चित्र अच्छा और सुंदर होता है। अब यह अच्छा चित्र बनाएं कैसे? आपका जवाब होगा हाथ में पेन्सिल या चॉक लेकर। एक तरह से यह भी सही है। वैसे छोटे बच्चे के हाथ में भी पेन्सिल या चॉक थमा दो तो वह भी दीवारों पर कुछ–न–कुछ जरूर बना देता है। थोड़ी समझ आने पर उसे घर, आदमी, पर्वत, पंछी जैसे आकार बनाना आने लगता है। धीरे–धीरे वह इन्हीं आकारों को मिलाकर एक समूचा चित्र बनाने लगता है। इस चित्र की शुरूआत होती कहां से है? बिंदु से अनेक बिंदु मिलाकर एक रेखा बनती है और रेखाओं को मोड़कर तैयार होते हैं आकार। इन्हीं आकारों में फिर रंग भरकर चित्र बनता है। कई चित्रों में रंग नहीं होते, केवल रेखाएं होती हैं। ऐसे चित्रों को रेखांकन कहते हैं अर्थात ऐसे चित्रों में भी विचार व भाव–भावनाएं होती हैं। किसी भी चित्र की रेखाओं में, आकारों में, रंगों में यदि विचार, भाव–भावनाओं को शामिल किया गया हो तो ही उससे अच्छी अभिव्यक्ति हो सकती हैं।

इस किताब में हम बहुत से चित्र देखेंगे भी और उनकी जानकारी भी लेंगे। लेकिन उससे पहले 'चित्र कैसे देखते हैं,' आइए इसके बारे में थोड़ी बात करते हैं। कई बार चित्र के साथ में उसकी जानकारी लिखी होती है– कलाकार का नाम, चित्र की कला–अवधि, आकारमान और चित्र का माध्यम। यह बात सच है कि सिर्फ जानकारी पढ़कर हम चित्र को समझ नहीं पाएंगे। लेकिन इस जानकारी से चित्रकार ने जिस परिस्थिति में चित्र का निर्माण किया है, उसका अनुमान लगा सकते हैं। चित्र के आकारमान से चित्र में बनाए गए आकार और प्रतिमाओं का अंदाजा होता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि चित्र का माध्यम चित्रकार की पहचान बनता है। अपनी कला निर्मिति के लिए चित्रकार ने यही माध्यम क्यों अपनाया, यह हम सोचते हैं। चित्र के बारे में यह पढ़ना तो आवश्यक है, लेकिन उससे भी आवश्यक है चित्र को बार–बार देखकर उसे अनुभव करना। चित्र समझने के लिए उससे घंटों तक बातें करनी पड़ेगी और अगर एक बार उससे आपकी दोस्ती हो गई तो चित्र खुद–ब–खुद अपनी कहानी बताने लगता है।

कोई चित्रकार अपनी कलाकृति में इंसान, पशु–पक्षी और वस्तु की प्रतिमाएं निकालता है तो कोई चित्रकार केवल रंग और रेखाओं के संयोग से चित्र बनाता है। जिनमें प्रतिमाएं होती हैं, उन्हें प्रतिरूप चित्र कहते हैं और जिनमें ऐसे विशिष्ट आकार, प्रतिमाएं नहीं होतीं, उन्हें अप्रतिरूप या अमूर्त चित्र कहते हैं। अमूर्त चित्र समझ में ही नहीं आता, ऐसा कहकर वे इसे मॉडर्न आर्ट कहते हैं। आपने कभी आंखें मूंदकर शांति का अनुभव किया है? ऐसी शांति को महसूस करते वक्त बंद आंखों के सामने कुछ रंग, आकार नजर आते हैं। उसमें कोई विशिष्ट कहानी या प्रसंग नहीं होता। वह तो केवल मन के विचारों का प्रतिबिंब होता है। होली खेलते वक्त हम यह नहीं सोचते कि अपने दोस्तों को हम किस आकार या रंग से रंगें? हम तो बस रंगों की बौछार करते हैं। हम मन के उसी आनंद को पूरे माहौल में प्रतिबिंबित करते हैं। अमूर्त चित्र ऐसा ही होता है, निराकार आनंद जैसा।

चित्र बनाने के लिए आजकल कई अलग और नए माध्यम उपलब्ध हैं। इन माध्यमों की वजह से चित्र को एक निश्चित रूप प्राप्त होता है। यह बताने का तात्पर्य इतना ही है कि हर चित्रकार का अपना एक माध्यम होता है। उत्तम बनाने के लिए केवल चित्रकारी का ज्ञान उपयुक्त नहीं है। इसकी भी एक कथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण में है। वज्र नाम का एक शिष्य मार्कण्डेय ऋषि के पास शिल्पकारी सीखने के लिए आता है। वह ऋषिवर से मूर्तिशास्त्र सिखाने की विनती करता है। मार्कण्डेय ऋषि उससे कहते हैं, मूर्तिशास्त्र सीखने के लिए चित्रकारी आनी जरूरी है।

''तो फिर मुझे चित्रकारी सिखाएं।'' ऐसी विनती वज्र करता है।

चित्रकला का ज्ञान पाने के लिए नृत्य सीखना जरूरी है। ऋषि समझाते हैं। वज्र नृत्य सिखाने की विनती करता है। ऋषि कहते हैं, वाद्य के ज्ञान बिना नृत्य नहीं आ सकता। ''तो वाद्य सिखाइए।''

वज्र की इस विनती पर मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं, वाद्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साहित्य और गीत का ज्ञान भी आवश्यक है।

आखिर गीतशास्त्र से वज्र की शिक्षा शुरू होती है। मतलब यह है कि सब कलाएं एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। सबमें से थोड़ा–थोड़ा रस लेकर ही हमें उसे अनुभव करना चाहिए, सीखना चाहिए।

गुफाचित्र–भीमबेटका (म.प्र.)

यह चित्र मध्यप्रदेश के भीमबेटका गुफाओं में है आदिमानव द्वारा चित्रित किया हुआ, लगभग दस हजार वर्ष पुराना चित्र। इन गुफाओं की खोज हाल ही में हुई है। महाराष्ट्र के पुरातत्व–विद्या के अभ्यासक एवं संशोधक श्री हरिभाऊ वाकणकर ने इन गुफाओं की खोज की। पुरातत्व–विद्या अर्थात पुरातन अवशेषों का अभ्यास। भीमबेटका जैसी गुफाएं पूरे भारत में कई जगहों पर पाई जाती हैं। लेकिन अभ्यासकों ने इन भीमबेटका गुफाओं को अति प्राचीन और अधिक महत्वपूर्ण माना है।

इन चित्रों को गौर से देखें तो समझ में आता है कि यह केवल दीवारों व छतों पर बनाए हुए चित्र ही नहीं हैं, बल्कि इन्हें पत्थरों में हल्का–सा तराशा गया है। आदिमानव का जीवन कैसा था, इसकी कल्पना आप कर सकते हैं। घने जंगलों में अपनी अन्न, वस्त्र और निवास की मूल जरूरतों को पूरा करते हुए वह शिकार करता था। उसका सारा जीवन इस शिकार से ही जुड़ा हुआ था। इसलिए उसके गुफाचित्र भी इसी विषय के हैं। गाय, बैल, सुअर, हिरण ऐसे लगभग 452 प्राणी इन गुफाचित्रों में दिखाए गए हैं। कई प्राणियों के पेट में उसके बच्चे भी चित्रित किए गए हैं, मानो जैसे उसका 'एक्स–रे' निकाला हो।

शिकार और इन मूल जरूरतों का चित्र बनाने से क्या संबंध हो सकता है? आजकल हम किसी काम पर जाने से पहले भगवान की पूजा करते हैं। वैसे उस वक्त भी आदमी शिकार करने से पहले उस प्राणी के बारे में सोचकर भगवान की पूजा करके चित्र बनाता था। शिकार के लिए आवश्यक तकनीक और मानसिक शक्ति वह चित्र बनाकर प्राप्त कर लेता था। चित्र में प्राणी के शरीर में घुसे हुए बाण दिखाए गए हैं। प्राणी को कहां बाण मारने से उसकी तुरंत मृत्यु होगी, शायद इसका भी अभ्यास चित्र के माध्यम से किया गया होगा। जिस

प्राणी का शिकार करना है, लोग उसका चित्र बनाकर उसकी पूजा करते होंगे– यह भी एक संभावना है। प्राणी प्रकृति का एक घटक है। उसका शिकार करने से प्राणीशाप देंगे, उससे बचने के लिए ऐसी पूजाएं होती होंगी अभ्यासकों का यह मानना है। चित्र बनाने के लिए ऐसी कई प्रेरणाएं हैं। यह गुफाचित्र देखते हुए हम उस आदिम जमाने में खो जाते हैं। उस समय के जीवन का विचार करते हुए सोचने भी लगते हैं कैसे जिए होंगे ये आदिम लोग?

अजंता गुफाचित्र

मध्यप्रदेश से अब हम चलते हैं महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में यहां का हरा–भरा खूबसूरत परिसर, पहाड़ों से बहते हुए पानी का संगीत, पंछियों का गुंजन, साथ में फैली हुई सुनहरी धूप। ये हैं अजंता की गुफाएं और यह उपर दिया हुआ चित्र इन्हीं गुफाओं का प्रसिद्ध चित्र 'प्रद्यपाणि बोधिसत्व' है। इस चित्र के बारे में थोड़ा और जान लें तो यह दोबारा या वहां जाकर प्रत्यक्ष रूप से देखते वक्त इसका आनन्द दुगुना हो जाएगा। अजंता की गुफाओं के इन चित्रों का गुप्तकाल में निर्माण हुआ पहली सदी से छठी सदी के काल में। भीमबेटका के गुफाचित्र और अजंता के गुफाचित्र के काल में काफी अन्तर है। कागज, कपड़ा, रंग वाले माध्यम शिल्पकारी के पत्थर या लकड़ी जैसे माध्यम से कम टिकाऊ हैं। समय की गोद में वे जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही कुछ इस बीच की कालावधि में हुआ होगा। सिंधु संस्कृति से शुंगकाल तक की शिल्पकला और वास्तुकला के अवशेष मिले हैं। चित्रकारी के ऐसे महत्वपूर्ण अवशेष न मिलने के कारण हम सीधे गुप्तकाल में आते हैं। अजंता के ये गुफाचित्र भीमबेटका के गुफाचित्रों की तरह केवल दीवारों पर बनाए हुए नहीं हैं। इन गुफाओं की दीवारों की सतह विशिष्ट प्रकार के प्लास्टर से पोतकर बनाई गई है। इस पुताई की प्रक्रिया में 'प्रेफस्को तंत्र' और 'टेंपरा तंत्र' ऐसे दो प्रकार हैं। 'टेंपरा तंत्रा' में सूखी सतह पर चित्र बनाते हैं और 'प्रेफस्को तंत्रा' में सतह गीली होती है।

अजंता चित्र के विषय बौद्धधर्म से संबंधित हैं। इनमें प्रमुख विषय है 'जातक कथा' अर्थात् भगवान बुद्ध के पुनर्जन्म की कथा। इसके अलावा, उस वक्त की दैनंदिन जीवनचर्या, प्राणी, पंछी इत्यादि के कुछ चित्र देखने को मिलते हैं। ये चित्र बौद्धधर्म से काफी जुड़े हुए हैं। इसी काल में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार पूरे भारत में बड़े पैमाने पर हुआ। यही उसका प्रमुख कारण है। ये निर्मित चित्र इस प्रचार का ही एक हिस्सा थे। इन चित्रों के लिए प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल किया गया था। हल्दी से बना पीला रंग, दिए की कालिख से बना काला रंग, पेड़ के पत्तों से बना हरा रंग, लेपिझ लाझुली के पत्थर से बना नीला रंग और मिट्टी के लाल रंग से विविध छटाएं बनाई जाती थीं।

प्रक्रिया जानने के बाद अब फिर से 'प्रद्यपाणि बोधिसत्व' देखते हैं। बोधिसत्व भगवान बुद्ध का ज्ञान प्राप्ति से पहले का राजस रूप है। प्रद्य अर्थात् कमल और पाणि यानी हाथ। हाथ में धारण किया हुआ

नीलकमल इस चित्र का आकर्षण बिंदु है। हाथ की लयदार मुद्रा किसी कुशल नृत्यांगना जैसी दिखती है। भगवान बुद्ध राजा के रूप में दिखाए गए हैं। माथे पर मुकुट, गले में माला, कंधे पर जनेऊ, हाथ में कड़ा, कमर का वस्त्र, कमरपट्ट के मोतियों की पिरावट बड़ी सुंदरता से चित्रित की गई है। बुद्ध की पूरी प्रतिमा दाईं ओर झुकी हुई है, लेकिन उनका चेहरा हल्का–सा बाईं ओर झुका है। इस कारण चित्र में एक विशिष्ट लय का निर्माण होता है। चेहरे पर दिखाए गए शांत और संयमी भाव, कमल पंखुड़ियों जैसी अर्धेन्मीलित आंखें, सीधी नाक और माथे से हनुवटी तक फैला हुआ उजले चेहरे का स्मितहास्य बुद्ध के राजसी रूप को अधिक उठाव देता है। हर बार यह चित्र देखते हुए कुछ और नया पाने का आनन्द मिलता है। इस बोधिसत्व के पीछे राजमहल का कुछ हिस्सा, आदमी, पंछी जैसे आकार भी दिखते हैं। यहां अंकित ये चित्र आपको केवल उसकी भव्यता का अंदाजा दे सकते हैं। 'प्रद्यपाणि बोधिसत्व' हो या 'काली रानी', 'मां और बच्चा' हो या 'इंद्र और अप्सरा' सभी चित्र सुंदर हैं। यह सब पढ़ने के बाद, अजंता जाकर ये चित्र प्रत्यक्ष रूप से देखने पर आपको अधिक आनन्द आएगा।

लघुचित्र शैली

चित्र की जानकारी में 'लघुचित्र शैली', यह ठीक पढ़ा आपने! जैसे भित्तिचित्र–दीवार आकार का, वैसे ही 'लघुचित्र', अर्थात् छोटे आकार का। सामान्य–तौर पर ऐसे चित्र कागजों पर बनाए जाते हैं। सामान्य चित्र की तरह यह तुरंत नहीं बनता। 'लघुचित्र' बनाने के लिए एक खास किस्म का कागज हाथ से बनाया जाता था। इस पर बारीक रेखाओं से बाहरी आकार बनाकर उसे प्राकृतिक रंगों से रंगा जाता था। उसपर फिर बारीकियां दिखाते थे और सबसे आखिर में सुनहरे रंग का लेपन होता था। इसके लिए खरा सोना इस्तेमाल करते थे। चित्र के सभी रंग एक–दूसरे में घुल मिलकर थोड़ा सौम्य हो आएं और चित्र थोड़ा चमकीला लगे, इसके लिए चिकने पत्थर से चित्र पर घिसाई होती थी। लघुचित्र का आकार कम–से–कम 8×10 सेंटीमीटर और अधिक से अधिक 70×50 सेंटीमीटर होता था। आकारों की लयदार बाहरी रेखाएं और सपाट रंग–लेपन, लघुचित्रशैली की विशिष्टता मानी जाती है। भारतीय चित्रकारों को यह चित्रशैली मुगल चित्रकारों ने सिखाई और मुगलों को पारसी चित्रकारों ने। इससे आप इसका अंदाजा लगा सकते हैं कि यह परम्परा कितनी पुरानी है और कितनी दूरी तय करके आई है।

माध्यम– कागज पर नैसर्गिक रंग,
चित्रकार–मिसकीन

मुगल लघुचित्र शैली

बाबर, हुमायूं, अकबर, जहांगीर,शााहजहां, औरंगजेब ये नाम आपने इतिहास में पढ़े होंगे। अकबर की कथाएं, शाहजहां का ताजमहल,शिवाजी महाराज और औरंगजेब की जंगली हाथी पर अंकुश की कोशिश में अकबर, माध्यम–कागज पर नैसर्गिक रंग, चित्रकार–मिसकीन कथाएं प्रसिद्ध हैं। इन्हीं बादशाहों के जमाने में मुगल लघुचित्र शैली का निर्माण हुआ। यह समय था 15 वीं से 17 वीं सदी का। उस वक्त भारत मुगलों के अधीन था। इन सभी रईस बादशाहों ने कई चित्रकार अपने दरबार में रखे थे। मीर सैयद अली, अद्व–अल–साजैद ऐसे मुगल लघुचित्रकारों ने बासवान, मिसकीन, दासवथ जैसे भारतीय चित्रकारों को तैयार किया। आगे चलकर इन्हीं चित्रकारों ने 'दरबारी चित्रकार' के रूप में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त किया। मुगल लघुचित्र के विषय थे राजा का शौर्य और पराक्रम। हमझनामा, अकबरनामा (अकबर चरित्र), तुतीनामा तोते की कथाएं, रमझनामा महाभारत जैसे उस जमाने के ग्रंथों की विषय–वस्तु पर भी काफी चित्र बनाए गए।

साहित्य और चित्रकारी का घना संबंध यहां देखने को मिलता है।

ऊपर का यह चित्र अकबरनामा से है। इसमें तिरछी चित्रकारी की गई है। चित्र के एक सिरे से दूसरे सिरे तक झेलम नदी का पुल बनाया गया है। तिरछी रेखाओं के कारण चित्र दो हिस्सों में बंट सकता है। चित्र दो हिस्सों में न बंटे चित्रकार 'मिसकीन' ने चित्र के उपरी हिस्से में राजमहल दिखाकर इसकी सावध ानी बरती है। झेलम नदी के पुल से गुजरने वाले दो मदोन्मत्त हाथी और उन पर अंकुश रखने वाले बादशाह अकबर इस चित्र में दिखाए गए हैं। भागते हुए हाथी, नदी का खौलता हुआ पानी, पानी में अस्तव्यस्त नाव और सेवक उनके हावभाव से चित्र में एक गति का निर्माण होता है। चित्र की गर्म और ठंडी रंगसंगति चित्र–विषय की गति का पूरक है। चित्र देखते हुए हमारी नजर भी चित्र के आकारों की तरह भागने लगती है। अकबर बादशाह के शौर्य और ताकत, उसके रहन–सहन का हमें एहसास होता है। अकबर बादशाह के उसी ठाट से हम भी अपने–आप चित्र में शामिल हो जाते हैं।

अकबर के बाद बादशाह जहांगीर को प्रकृति से लगाव था। उसने अपने 'मन्सूर' जैसे चित्रकारों से पशु, पंछी, फूल, पेड़–पौधे आदि विषय पर चित्र बनवाए। 'जेब्रा', 'तुर्की मुर्गा' उन्हीं में से कुछ प्रसिद्ध चित्र हैं। शाहजहां को चित्रकला से अधिक वास्तुकला में रुचि थी। आगरे का ताजमहल उसके वास्तु–प्रेम का सबसे बड़ा साक्षी है। उसने अपने दरबारी चित्रकारों से वास्तुकला के नमूने चित्रें में बनवाए। उसके बाद बादशाह औरंगजेब गद्दी पर बैठा। इसे चित्रकला में कोई विशेष रुचि नहीं थी। इस दौरान उसके और उसके अधीन राजाओं के दरबारी चित्रकारों को काम मिलना मुश्किल हुआ। फिर धीरे–धीरे ये चित्रकार हिन्दू राजपूत राजाओं के आश्रय में चले गए। यह पढ़ते हुए समझ में आता है कि राजा–महाराजाओं ने अपनी–अपनी पसंद के अनुसार चित्रकारों से चित्र बनवाए। इसलिए यह चित्रकारी दरबारी कला कहलाती है।

राजपूत लघुचित्र शैली

राधा–कृष्ण वाला चित्र काफी सुंदर है न? यह चित्र राजपूत लघुशैली के किशनगढ़ नामक उप–शैली का है। राजपूत शैली मुख्य रूप से दो हिस्सों में बंटी हुई है। पहला प्रकार है राजस्थानी लघुशैली। इसमें भी और उप–प्रकार हैं। इन उप–प्रकारों के नाम उनके प्रदेशों के नाम के अनुसार रखे गए हैं जैसे मेवाड़, बूंदी, जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, कोटा इत्यादि। दूसरा प्रमुख प्रकार है पहाड़ी लघुचित्र शैली। इसके उप–प्रकार हैं बशोली, कुलु, गुलेर, जम्मू, कांगड़ा, गढ़वाल आदि। इनमें से कुछ नाम जाने–पहचाने लगते हैं न? हो सकता है। आखिर ये भी तो भू–प्रदेशों के ही नाम हैं।

इन सभी शैलियों में थोड़ा–बहुत फर्क है, जिसके कारण हम उसको अलग से पहचान सकते हैं। इसके बारे में हम अधिक विस्तार से नहीं सोचेंगे। लेकिन थोड़ी जानकारी लेना आवश्यक है। राजस्थानी शैली में बाहरी रेखाएं गहरी होती हैं। चित्र की रंगसंगति तेजस्वी है बिल्कुल राजस्थानी लोगों की पगड़ी की तरह, उनके घाघरे और चोली के रंगों की तरह। पहाड़ी चित्रशैली में नाजुक रेखाएं, सौम्य रंगसंगति दिखाई देती है कुल्लू, जम्मू या हिमाचल के शांत ठंडे मौसम के जैसी। मजे की बात यह है कि राजपूत लघुचित्र शैली के विषय मुगल लघुचित्र शैली से बिल्कुल ही भिन्न हैं। इस लघुचित्र शैली में गीत–गोविन्द, भागवत पुराण जैसे राधाकृष्ण के प्रेमकाव्य पर आधरित चित्र दिखते हैं। इतना ही नहीं, इनमें रागमाला ;भारतीय संगीत के रागों के भाव, बारहमासा, नायक–नायिका भेद पर आधरित चित्र हैं। राजपूत

नैसर्गिक रंग, चित्रकार–निहालचंद

लघुचित्र शैली प्रकृति, स्त्री–पुरुष की प्रेम भावनाओं, भक्ति–रस को महत्त्वपूर्ण मानती है।

यहां दिया गया यह चित्र किशनगढ़ शैली का है। राधा और कृष्ण का यह चित्र भक्ति–रस का आविष्कार कह सकते हैं। इसमें दिखाई गई राधा को 'बनीठनी' भी कहते हैं। 'बनीठनी' अर्थात् सजधज कर तैयार हुई चतुर स्त्री। किशनगढ़ के राजा सावंत सिंह खुद कृष्णभक्त थे। वह खुद एक उत्कृष्ट कवि भी थे। उन्होंने 'नागरीदास' उपनाम से प्रेम–काव्य लिखे। उनकी प्रेयसी उनकी सौतेली मां की दासी थी, जिसे वे प्यार से 'बनीठनी' कहते थे। सावंत सिंह के दरबारी चित्रकारों ने राजा के काव्य पर आधारित चित्र बनाए। उसमें काव्यानुरूप अपने राजा को कृष्ण रूप में और उनकी प्रेयसी को राधा रूप में चित्रित करके, उनके भक्ति–प्रेम को अजर–अमर कर दिया। बनीठनी राधा का चेहरा देखें तो चौड़ा मस्तक, लम्बी झुकी हुई आंखें, उनके किनारे की कमल जैसी गुलाबी छटा, धनुष की आकृति वाली भौंहें, गालों पर लहराती बालों की लटें, सीधी लंबी नाक, पतले होठों पर मुस्कुराता कोमल चेहरा। राधा का यह चेहरा बहुत ही मोहक दिखता है। उसके परिधान, मोतियों के गहने, उसकी बारीकियां, सुनहरी नक्काशी वाली पारदर्शक चुनरी उसकी मोहकता को और बढ़ाते हैं। कृष्ण तो मूलतः देवता स्वरूप हैं। उनका भी चौड़ा माथा, कमल की आकृति वाली भौंहें, कमल जैसी आंखें, सीधी नाक, नाजुक हनुवटी, संवेदनशील होठों पर दिखाया गया कृष्ण हास्य, केसरिया रंग की खूबसूरत पगड़ी कृष्ण का यह राजस रूप, राधाकृष्ण का एक–दूसरे की ओर देखना, यह सब उचित प्रेम–भावना व्यक्त करता है। बनीठनी के बारे में एक और बात है। इसके हास्य की तुलना लिओनार्दो–दा–विंची के 'मोनालिसा' से की जाती है। इसे 'भारतीय मोनालिसा' भी कहा गया है। आपने 'मोनालिसा' का चित्र देखा है? नहीं? तो जरूर देखिए और बताइए आपको क्या लगता है?

वारली चित्रकला

क्या आपको ऐसा लगता है कि यह गोल और त्रिकोणी इंसान आपने कहीं देखे हैं? शायद हो सकता है। आजकल ये चित्र बड़े–बड़े सरकारी कार्यालयों में, उपहार–गृहों में और बड़े–बड़े घरों में भी दिखने लगे हैं। यह 'वारली चित्रकला' है। असल में भीमबेटका की आदिम चित्रकारी से जुड़ी हुई, आदिम चित्रकला परम्परा, भारत के अलग–अलग प्रदेशों में आज भी मौजूद है। संथाल, गोंड़, वारली इन्हीं में से कुछ हैं। महाराष्ट्र के थाने जिले में यह वारली चित्रकारी कई वर्षों से शुरू है। लेकिन इसकी खोज हाल ही के कुछ सालों में हुई। श्री भास्कर कुलकर्णी नामक चित्रकार ने यह चित्रकारी पूरी दुनिया के सामने लाई थी। वारली समाज आज भी आदिमानव का जीवन ही व्यतीत कर रहा है। वारली घरों में आज भी त्यौहारों के बहाने औरतों द्वारा दीवारों पर चित्र बनाने की प्रथा है। यहां पारम्परिक प्रथा से तो स्त्रियां चित्र बनाती हैं, पर यह सुनकर ताज्जुब होगा कि उनके अच्छे चित्रकार के तौर पर, जिसे राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया है, 'जीव्या सोम्या म्हशा' नामक पुरुष चित्रकार है।

वारली लोग गोबर या गेरु से दीवारों की पुताई करते हैं। फिर उस पर चावल के गीले आटे से चित्र बनाते हैं। इनके घरों के सामने खजूर के पेड़ होते हैं। इसी पेड़ का कांटा वे चित्र बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। पहले इनका सारा जीवन जंगल में खाना जमा करते हुए बीतता था। आजकल ये लोग थोड़ी–बहुत खेती करने लगे हैं। यही कारण है कि इनके चित्रों में पेड़, पंछी, बादल, खेत, बिच्छू, सांप, कीट, पहाड़, पहाड़ों पर बना मंदिर और भगवान भी होते हैं। गोलाकार खड़े हुए लोग और बीचों–बीच तारपा वाद्य बजाने वाला पुरुष यह वारली चित्र का सबसे प्रसिद्ध आकार है। यह वारली नृत्य का चित्र है। पूनम की रात में ये लोग 'तारपा' नामक सामूहिक नृत्य करते हैं। वारली आदिम लोग प्रकृति में रहकर प्रकृति के ही चित्र बनाते हैं। आप इनके बनाए चित्र देखें। चित्र में दिखाई गई प्रकृति की बारीकियों का आनन्द जरूर लीजिए। कीड़े, मोर के सुन्दर आकार, घरों के अनाज में लगे चूहे, बीच में ही भागने वाला हिरण, पेड़ पर बैठे मोर का शिकार ऐसी कई छोटी–छोटी बारीकियां आपको दिखेंगी। आजकल इनके गांव में रेलगाड़ी, ट्रक, वगैरा आने–जाने लगे हैं। इसीलिए ये आकृतियां भी इनके चित्रों में दिखने लगी हैं। यह सब चित्र में ढूंढ़ना वाकई मजेदार अनुभव होता है। ऐसा ही अनुभव गोंड़, संथाल चित्र ढूंढ़ने में होता है।

पट्टचित्र देखाबा

भारत जैसे बहुरंगी, बहुढंगी और बहुभाषिक देश में सदियों से अनेक परंपराएं रही हैं। आदिम कला परंपराओं के साथ यहां लोक परंपराएं भी हैं। पट्टचित्र, कलमकारी, मधुबनी ये ऐसी ही कुछ लोक परंपराएं हैं। गांव में रहने वाले लोगों को शायद पट्टचित्र मालूम होगा। पट्टचित्र किसी कथा पर आधारित चित्र–शृंखला होती है। आमतौर पर रामायण, महाभारत, कृष्ण गाथा इसके विषय होते हैं। पट्टचित्र निर्मिति आजकल बहुत ही कम हो गई है। लेकिन इसकी प्रस्तुति आज भी अनेक गांवों में होती है। किसी एक रात में गांव की स्त्रियां, बच्चे, पुरुष इकट्ठा होते हैं। किसी घर या मंदिर का बड़ा–सा आंगन लोगों से भर जाता है। कलाकार पट्टचित्र लेकर आता है। दिए के उजाले में कलाकार एक–एक चित्र प्रस्तुत कर गाने लगता है। गाना रूकते ही कथा शुरू हो जाती है। गाना, फिर कथा ऐसे कथा आगे बढ़ती है। आज का सिनेमा या ऐनिमेशन फिल्म का यह शुरूआती रूप है। संथाल परगना में इसको 'जादूपटुआ' कहते हैं। बंगाल में 'पट्टदेखाबा',

राजस्थान में 'पट' तो महाराष्ट्र में यह 'चित्रकथी' के नाम से जाना जाता है। उड़ीसा, गुजरात, आंध्रप्रदेश में भी यह पट्टचित्र परंपरा है। इन सभी शैलियों में थोड़ा बहुत फर्क है। महाराष्ट्र की चित्रकथा कागज पर बनाई जाती है। भारत के बाकी जगह पर पट्टचित्र कपड़े पर बनाए जाते हैं। कपड़े पर बनाए इस चित्र को गोलाकार लपेटकर रखते हैं। कागज पर बने चित्र को एक के ऊपर एक रखते हैं। पट्टचित्र के लिए पूरे भारत में प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल होता है। भारतीय चित्रकला की यह दृश्य–श्रव्य कला–परंपरा बड़ी ही आकर्षक है। यह सब पढ़कर क्या आपको नहीं लगता कि आप भी अपने आस–पास के पट्ट चित्र ढूंढ़कर उनके कलाकारों के साथ उनकी प्रस्तुति देखते हुए कोई रात गुजारें?

कलमकारी चित्र

पट्टचित्र की तरह 'कलमकारी' भी कपड़े पर बनाई जानेवाली चित्र–परंपरा है। यह मुख्यतः आंध्र की चित्र–परंपरा के चित्र हैं, जो वहां के मंदिरों में लगाए जाते हैं। कलमकारी शब्द 'कलम' फारसी शब्द से आया है। कलम अर्थात् लेखनी। सूती कपड़े पर कलम से चित्र बनाए जाते हैं। चित्र में लेखनी का इस्तेमाल होने से यहां रेखाओं का महत्त्व अधिक है। यह लेखनी खजूर या बांस की लकड़ी से बनती है। रेखांकन के लिए नुकीली, तो रंग–कार्य के लिए गोलाकार लेखनी बनाई जाती है। इन चित्रों के परंपरागत विषय सहज रूप से पुराण–कथाओं पर आधरित हैं। ऊपर के चित्र में कृष्ण–अर्जुन का संवाद है। इन चित्रों में मर्यादित रंगसंगति का इस्तेमाल होता है। देवताओं के चित्र नीले, मानवाकृति पीले और राक्षस लाल रंग से दिखाए

जाते हैं। आजकल पारंपरिक कलमकारी से बड़ी चित्र रचनाएं बनाने वाले कारीगर कम हो गए हैं। लेकिन आज भी बड़ी दुकानों में फूलपत्तों की कलमकारी वाले बेडशीट, कुर्ते–पैजामे, परदे आदि कपड़े देखने को मिलते हैं।

मधुबनी चित्रशैली

'मिथिला' का नाम आपने रामायण में पढ़ा होगा। मिथिला प्रदेश बिहार में है। इसी मिथिला की कला को मधुबनी कहते हैं। इसके मुख्य विषय रामायण पर आधारित होते हैं। मूलतः मधुबनी चित्र घरों पर बनते हैं। पूजा घर, बैठक खाना मेहमान जहां बैठते हैं और शादी का कमरा ऐसी तीन जगहों पर चित्र बनाने की परंपरा है। आजकल कागज पर भी चित्र बनाए जाते हैं। इन चित्रों में भी लोक चित्र–परंपरा जैसे प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल होता है। एक और मजे की बात यह है कि रंग सतह पर ठीक से चिपके, इसके लिए इसमें बकरी के दूध और बबूल के पेड़ के चिक का मिश्रण किया जाता है। मिथिला की चित्रकृति में आज भी घरों में बनाई गई कैचियों का ही इस्तेमाल करते हैं। रंग–लेपन और बारीकियां दिखाने का साहित्य उतना विकसित नहीं है। शायद इसीलिए इन चित्रों का ग्रामीण लहजा आज भी कायम है। आजकल इन चित्रों की विदेशों में बड़ी मांग है। इसलिए भारतीय कारीगरों के मेलों और बाजारों में ऐसे चित्र देखने को मिलते हैं।

भारतीय समकालीन चित्रकला

(आजादी के पहले और बाद की भारतीय चित्रकला)

समकालीन अर्थात् आज का। हमने आदिम और लोकचित्रकला भी देखी। सालों–साल अपनी विशिष्टताओं के साथ इनका निर्माण होता रहा है। पर कला प्रवाह अपना मूलस्वरूप कायम रखकर दृश्य प्रवाह बदलता रहा है जैसे अजंता के बुद्ध चित्र, मुगल लघुचित्र और राजपूत चित्र शैली।

17 वीं शती में भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन हुआ। व्यापार उद्योग के लिए आयी हुई इस कंपनी ने धीरे–धीरे यहां के राजकाज और समाजकाज में भी अपना पैर पसारना शुरू किया। बाद में पूरे भारत पर ही कब्जा किया। भारत को अपनी स्वतंत्रता के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ा। 1947 में भारत फिर से आजाद हुआ। इस दौरान का इतिहास सभी को ज्ञात है। भारत की स्वतंत्राता के पूर्व और पश्चात की चित्रकला इसी इतिहास से संबंधित है। इतिहास का नाम सुनकर घबराइए मत। यह पूरा इतिहास चित्रमय है। पर इसे देखते वक्त संयम से रूककर विचार जरूर करना पड़ेगा।

हमने 17 वीं शती तक की लघुचित्र शैली देखी। इस शती तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी जड़ें पूरे भारत में फैला ली थीं। इस कंपनी के अधिकारियों के साथ आए हुए चित्रकारों ने यहां के प्राकृतिक दृश्य, यहां की जातियों के उद्योग और व्यवसाय, उनके चित्र, और रहन–सहन तथा राजा–महाराजाओं का व्यक्ति चित्र बनाना शुरू किया था। भारतीय चित्रकारों ने इससे पहले फोटो जैसे दिखने वाले, छाया प्रकाश दिखाने वाले चित्र देखे ही नहीं थे। लघुचित्र शैली सुंदर थी, पर उसमें लयदार रेखाएं, सपाट रंग–लेपन था और विषय भी राधाकृष्ण के थे। खुद का भी चित्र बना सकते हैं भारतीय चित्रकारों को इसका पहली बार एहसास हुआ। यहां से भारतीयों को यथार्थवादी चित्र–शैली की आस लगी। आज भी अगर कोई आपका चित्र बनाए तो आपको अच्छा ही लगता है। है न?

17 वीं शती के मध्य में चित्रकला से संबंधित और एक घटना घटी। मद्रास, कलकत्ता, मुंबई और लाहौर में कला–शिक्षा देने वाली संस्थाएं ब्रिटिश मार्गदर्शन में शुरू हुईं। उसका परिणाम आपके सम्मुख है। भारत की पारंपरिक चित्रकला निर्मिति ठंडी हो गई। भारतीय चित्रकला ब्रिटिश पद्धति से दी जाने वाली शिक्षा लेने लगे। इसमें यथार्थवादी चित्रण कैसे करें, यथार्थ दृश्य में पास और दूर की चीजें कैसे दिखाएं, वस्तु पर दिखने वाले छाया–प्रकाश और मौसम का परिणाम कैसे दिखाएं, यह सब सिखाया जाता था। भारतीय चित्रकारों ने पहले कभी इसके बारे में सोचा नहीं था। भारतीय चित्रकार इन बाहरी चीजों की बजाय आत्मा, मन, जैसे विषय पर चित्रनिर्मिति करते थे। यहां से हमारी चित्रनिर्मिति में पूरा बदलाव आया।

राजा रवि वर्मा

राजा रवि वर्मा भारत के प्रसिद्ध चित्रकारों में सबसे प्रमुख नाम है। इनका जन्म 1847 में केरल के किल्लीमन्नुर गांव में हुआ। भारत में कला शिक्षण शुरू होने का यह समय था। रवि वर्मा के मामा चित्रकार थे। राजा रवि वर्मा का प्राथमिक शिक्षण उनके इसी मामा के पास हुआ। आगे भी इनका कला शिक्षण किसी भी कला संस्थान में नहीं हुआ। वे खुद अपने–आप ही चित्रकला सीखते गए। त्रावणकोर संस्थान में आने वाले ब्रिटिश चित्रकारों के चित्रण का वे बारीकी से निरीक्षण करते थे। त्रावणकोर के दीवान माधवराव ने राजा रवि वर्मा को चित्रकारी के लिए प्रोत्साहित किया। राजा रवि वर्मा ने रावण–जटायु युद्ध कृष्ण–शिष्टाई, कृष्ण–बलराम, नल–दमयंती, शकुंतला, मत्स्यगंधा जैसे पौराणिक विषय पर चित्र बनाए। इसके लिए इस्तेमाल किया हुआ केनवास और तैलरंग माध्यम पाश्चात्य थे। उनके द्वारा बनाया हुआ केरल स्त्री का चित्र 'नायर सुंदरी' के नाम से बड़ा ही मशहूर है। 1873 में 'शिकागो' की प्रदर्शनी में उनके 10 चित्र चुने गए थे। उस समय विदेश जाना और अपने चित्र प्रदर्शित करना उतना आसान नहीं था। बहुत ही लंबा और महंगा सफर था और कई सारी कठिनाइयां होती थीं। पर राजा रवि वर्मा ने यह कर दिखाया था। पाश्चात्य देशों में अपने चित्र प्रदर्शित करने वाले ये पहले भारतीय चित्रकार थे।

राजा रवि वर्मा का इस क्षेत्र में एक और महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह है 'ओलियोग्राफ' की निर्मिति। ओलियोग्राफ मुद्रा–चित्रण का प्रकार है। आज केलेंडर या चित्र का मुद्रण जितना आसान है, उतना विकसित तंत्रज्ञान उस वक्त नहीं था। उन्होंने जर्मनी से उस वक्त का विकसित तंत्र ज्ञान भारत में लाया और मुंबई में एक छपाई प्रेस शुरू किया। वहां उन्होंने अपने चित्रों का मुद्रण करके उसकी प्रतियां निकालीं। ये कॉपियां आम लोग भी आसानी से खरीद सके, ऐसी कीमतों में बेचीं। कैनवास पर बना मूल चित्र खरीदना सामान्य लोगों के बस में नहीं था। पर उनका पसंदीदा चित्र उनके पास हो, इसलिए यह अच्छा उपाय था। भारत के आम लोगों के घरों में राजा रवि वर्मा के चित्र पहुंचने का यही कारण था।

कृष्ण शिष्टाई, माध्यम–कैनवास पर तैल रंग, चित्रकार–राजा रवि वर्मा

यहां दिया गया रवि वर्मा का चित्र लघुचित्र शैली के कृष्ण और अजंता के बुद्ध से बिल्कुल ही अलग है। इसका कारण यथार्थवाद है। यह पहले के चित्रों में नहीं था। यथार्थवाद अर्थात वास्तव में जैसा दिखेगा वैसा ही, हुबहू! इस चित्र में पांडवों का दूत बनकर कौरवों के दरबार में गए हुए श्रीकृष्ण का चित्रण है। कृष्ण का जोश और कौरवों का अहंकार दोनों भावनाओं का मिलाप इस चित्र में दिखाया गया है। चित्र की रचना ऐसे की गई है, मानो असल में दरबार भरा हो। राजदरबार का चित्र होने के कारण, दरबारी लोगों के अधोवस्त्र, मुकुट और दूसरे गहने, दरबार की वास्तुश्याम वर्ण कृष्ण पर विशिष्ट दिशा में दिखाए गए प्रकाश की वजह से छाया–प्रकाश का एक अनूठा खेल दिखता है। यूरोपियन शैली का यथार्थवादी चित्रण करने का यही कला–तंत्र राजा रवि वर्मा ने आत्मसात कर लिया था। आज आप उनके बनाए मूल चित्र केरल के राष्ट्रीय कला संग्रहालय में और बड़ौदा के सयाजीराव गायकवाड़ के राजमहल में देख सकते हैं। रवि वर्मा के चित्रों को मिली प्रसिद्ध के कारण ही उन्हें 'चित्रकारों का राजा' और 'राजाओं का चित्रकार राजा रवि वर्मा' कहा जाता है।

त्रिंदाद

यह चित्र चित्रकार त्रिंदाद का है। 19 वीं शती के आखिर में और 20 वीं शती के शुरू में मुंबई कलाकारों का प्रमुख केन्द्र था। सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट में उस वक्त भारत भर से अनेक कलाकार आकर कला सीख रहे थे। त्रिंदाद ऐसे ही एक गांव से आए हुए चित्रकार थे। इनके चित्रों में उनके गोवा की पार्श्वभूमि की झलक दिखती है। ईसाई, पुर्तगाली लोग गोवा में बड़ी संख्या में थे। इसलिए वहां के चाल–चलन, त्यौहार, उत्सव और दैनंदिन चाल–चलन पर उसकी छाप नजर आती है। फिडल एक यूरोपियन वाद्य है। यह वाद्य बजाने वाला एक वादक इसमें चित्रित किया गया है। उसका चेहरा,

पर तैलरंग, चित्रकार –त्रिंदाद

त्वचा पर लाल रंग की आभा और उसका पहनावा भारतीय संस्कृति का नहीं है यह देखते ही पता चलता है। अंधेरे एकांत में बैठा हुआ वादक तन्मयता से वाद्य पकड़े है। त्रिंदाद ने छाया–प्रकाश से एक अलग ही वातावरण की निर्मिति की है। उनके रंग–लेपन में रंगों के स्ट्रोक्स राजा रवि वर्मा के चित्रों में नहीं दिखेंगे। यह मुक्त रंग–लेपन ब्रिटिश अकादमी से प्रभावित था। ब्रिटिश अकादमिक शैली के यथार्थवाद का मुंबई के चित्रकारों पर कैसा असर था, इसका यह अच्छा उदाहरण है।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर

भारतमाता माध्यम–कागज पर जल,
चित्रकार–अवनीन्द्रनाथ टैगोर

यह उस वक्त का चित्र है जब भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वदेशी का अभियान जोर पकड़ रहा था। अपने देश में बनने वाली वस्तुओं का ही विचार करना है यह विचार 'स्वदेशी' आंदोलन के माध्यम से सामने आया। राष्ट्राभिमान जगाने का प्रयास शुरू हुआ। 'स्वेदशी' आंदोलन ने भारत में इतिहास रचा। ऐसा ही एक पूरक आंदोलन बंगाल में शुरू हुआ, जिससे 'बंगाल स्कूल' या 'बंगाल शैली' कहा गया। बंगाल शब्द होने के बावजूद इसका केवल बंगाल प्रांत से संबंध नहीं था। इसका संबंध था केवल भारतीयता से। अवनीन्द्रनाथ टैगोर इस आंदोलन के उद्‌गाता थे। यह सर्वपरिचित रवीन्द्रनाथ टैगोर के भतीजे थे। अवनीन्द्रनाथ की टैगोर घराने की सुरक्षित और सुशिक्षित पृष्ठभूमि थी। वे उच्चविद्या विभूषित थे। स्वामी विवेकानंद, आनंद कुमारस्वामी, बहन निवेदिता, रवीन्द्रनाथ टैगोर इतना ही नहीं, महात्मा गांधी ने भी यूरोपियन कला का विरोध किया था। अवनीन्द्रनाथ का इन विभूतियों के साथ सीध संबंध था और उन्होंने 'बंगाल स्कूल' के आंदोलन की शुरूआत की। वह साल था 1895 का। अवनीन्द्रनाथ खुद एक चित्रकला शिक्षक थे। 'कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट' और शांति निकेतन के 'कलाभवन' में उन्होंने विद्यादान का कार्य किया। नंदलाल बोस, असित कुमार हलधर, के. व्यंकटप्पा, क्षितेंद्रनाथ मजूमदार जैसे कलाकारों की एक पीढ़ी का उन्होंने निर्माण किया। नंदलाल बोस ने आगे चलकर भारतीय कला में बड़ा योगदान दिया। हरिपुरा कांग्रेस के अधिवेशन में म्युरल यानि दीवार चित्र बनाने के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया था।

अवनीन्द्रनाथ का शिक्षक के रूप में योगदान महत्त्वपूर्ण है ही, लेकिन वे एक उत्तम चित्रकार भी थे। 'भारतमाता' उनकी शैली का उत्तम उदाहरण है। अवनीन्द्रनाथ के चित्रविषय अरबीयन नाईट्स, उमर खयाम, साहित्य और भारतीय पुराण–कथाओं पर आधारित हैं। इन विषयों पर उनके अनेक चित्र प्रसिद्ध हैं। लेकिन भारतमाता का यह चित्र उससे बहुत ही अलग है, फिर भी यह महत्वपूर्ण कलाकृति है। भारत जैसे बहुभाषिक सांस्कृतिक देश में भारतीयता की एक ही प्रतिमा दिखाना आसान नहीं था। उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक विविध वेशभूषा है। एक ऐसी वेशभूषा, शरीर का ढांचा, एक ऐसा रूप तैयार करना जो भारत के किसी एक प्रदेश का नहीं, बल्कि पूरे भारत का हो एक अत्यंत मुश्किल काम था। अवनीन्द्रनाथ ने इस मुश्किल काम को किया। इस चित्र में भारतमाता की आकृति अस्पष्ट, धुंधली पार्श्वभूमि से धीरे–धीरे उपर आ रही है, ऐसा आभास होता है। उसने केसरिया वस्त्र–परिधान धारण किए हैं। हाथ में माला व ग्रंथ जैसे आयुध ा हैं। ये आयुध हिंसक नहीं हैं, बल्कि अहिंसा का अवलंब करने वाले हैं। उसके वस्त्र किसी विशिष्ट प्रदेश के नहीं हैं। वे पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक स्त्री के रूप में यह भारतीयता का सुलभ दृश्यरूप है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम अधिकतर लोगों को साहित्यकार के रूप में मालूम है। शांति निकेतन और रवीन्द्रनाथ टैगोर का एक–दूसरे से अटूट रिश्ता है। इतिहास की किताबों में रवीन्द्रनाथ चित्रकार थे, ऐसा पढ़ने को मिलता है। लेकिन उनके चित्र अधिकतर कहीं देखने को नहीं मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण है कि रवीन्द्रनाथ ने 65 साल की उम्र में गंभीरता से चित्र बनाना शुरू किया। उनके जो कुछ गिने–चुने चित्र हैं वे शांति निकेतन के कलादालान में देखने को मिलते हैं। शांति निकेतन के मनोहारी वातावरण में चप्पल निकालकर हम वहां के कलादालान में प्रवेश करते हैं और रवीन्द्र संगीत की ताल पर थिरकती हुई रवीन्द्रनाथ की सहज सुंदर कला–कृतियां हमारे सम्मुख होती हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्यिक और तत्वज्ञ थे। दिनभर वे खूब लिखते थे। लिखते–लिखते कई शब्द मिटाए जाते तो कभी कोई विचार–पूर्ण रूप धारण करने तक वे अपनी ही धुन में खो जाते थे। उसी कागज पर गीर्गीटा यानि पेन से ऊल–जलूल आव फतियांद्ध जाता था। यही शब्द मिटाते हुए और गीर्गीटा हुआ जोड़कर चित्र बन जाता है। यह बात एक बार उनके ध्यान में आई। फिर क्या, और बहुत सारे चित्र बनने लगे। रोज नए–नए चित्र बनाना और रंग भरना अलग नहीं था। लिखाई के कोरे कागज, स्याही, लेखनी यही उनके चित्र के माध्यम थे। उसी से लिखना, उसी से चित्र बनाना और रंग भरना भी उसी से। इन चित्रों के विषय अधिकतर मन के काल्पनिक आकार, आस–पास की औरतें, बच्चों के दुखी चेहरे होते थे। रवीन्द्रनाथ का संवेदनशील मन दुखी मन की ओर खिंच जाता और उनके चित्रों में वह व्यक्त होता था। वे कहते थे, मैं निर्णय लेकर चित्र नहीं बनाता, चित्र बनाते–बनाते प्रतिमाएं आकार लेती हैं। यह पढ़कर लगता है कि अब हम भी बेझिझक गीर्गीटा सकते हैं। उसे कोई चित्र कहे या न कहे।

जामिनी रॉय

जामिनी रॉय हैं बंगाल के चित्रकार। 'बंगाल स्कूल' से इनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं था, पर यूरोपीय चित्रकला से उबकर उसे छोड़कर उन्होंने नया रास्ता अपनाया। खुद की एक स्वतंत्र शैली बनाई। यथार्थवादी चित्रण पद्धति के कारण लोग यूरोपियन शैली की ओर आकर्षित हो रहे थे, वहीं जामिनी रॉय उससे क्यों उकता गए, यह समझना जरूरी है। उनका बचपन गुजरा बंगाल के एक छोटे से गांव में। गरीब किसान के घर में उनका जन्म हुआ। घर में पैसे की अमीरी नहीं थी, पर आसपास निश्छल, निष्पाप लोग थे। प्रकृति की अमीरी थी, त्यौहार–उत्सव थे, पारंपरिक कथा और प्रथा थी। इन्हीं की संगत में वे बड़े हुए।

संथाल लोक जीवन, कालिघट चित्र–परंपरा का उन पर काफी प्रभाव था। ऐसे हालात में कला महाविद्यालयी शिक्षा का पराया लगना स्वाभाविक था। वे गांव वापस लौट आए। सहज–आसान आकार बनाकर उसमें रंग भरना शुरू किया। ये रंग भी नैसर्गिक थे। गोल चेहरा, मत्स्याकृति आंखें, धनुष्काकृति भौंहें, शरीर पर कम से कम आभूषण, ठोस और लयदार बाहरी रेखाएं, सपाट रंग–लेपन भारतीय कला की विशिष्टता को उन्होंने अपने अभ्यास से नया रूप दिया। संथाल देहाती महिलाएं, ग्रामीण खिलौने, ग्रामीण जनजीवन, पुराणकथा ये उनके चित्रों के विषय थे। जामिनी रॉय को रवीन्द्रभारती विद्यापीठ ने डॉक्टरेट देकर सम्मानित किया। भारत सरकार ने भी उन्हें प्रद्यभूषण पुरस्कार देकर उनके योगदान को प्रणाम किया है।

अमृता शेरगिल

वारली, मधुबनी जैसी कई चित्र परंपराएं हमने देखीं। यहां की महिलाओं ने इन परंपराओं को जतन करके आगे बढ़ाया, पर उन्हें भारतीय स्त्री चित्रकार की पहचान नहीं मिली। किसी विशिष्ट परिस्थिति या प्रसंग के बारे में उन्हें क्या लगता है, इन चित्रकर्ताओं ने अपने चित्रों में कहने का प्रयास नहीं किया। कहते भी कैसे? एक तो ये महिलाएं पढ़ी–लिखी नहीं थीं और दूसरे यह कि भारत में पुरूष–सत्तात्मक समाज है। यहां स्त्री को खुद की राय रखने के लिए बहुत ही धैर्य दिखाना पड़ता था। इस पृष्ठभूमि में पहला महिला नाम सुनाई दिया 1934 के बाद। यह नाम था अमृता शेरगिल। यहां आप जो चित्र देख रहे हैं उसमें सभी औरतें हैं। इसमें भी वे आकर्षक और सुंदर नहीं हैं। गांव की सीधी–सादी औरतें हैं। वे न तो राधा हैं, न नायिका न माता हैं, न देवी। भारतीय स्त्री का उस वक्त का प्रतिबिंब इसमें है। ऐसा क्यों था?

चित्रकार– अमृता शेरगिल

अमृता शेरगिल का जन्म यूरोप में हुआ। उनके पिता सिख और माता हंगेरियन थीं। उनकी पढ़ाई यूरोप में हुई और उन्होंने कला शिक्षा का 'मक्का' समझे जाने वाले पेरिस के आर्ट स्कूल से कला की शिक्षा प्राप्त की। स्वाभाविक तौर पर उनके कार्य में यूरोपीय संस्कृति के स्फूर्त और स्वतंत्र विचार दिखते थे। 1934 में वे यूरोप से भारत लौटीं और भारतीय संस्कृति की खोज में पूरे भारत में घूमीं। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विचारों को समझकर उन्होंने उससे एक कदम आगे जाने का प्रयास किया।

अमृता शेरगिल ने रवि वर्मा की तरह कैनवास और तैलरंगों का इस्तेमाल किया। इसकी वजह यह थी कि वे अपनी भावनाएं इस माध्यम में अधिक अच्छी तरह से व्यक्त कर सकती थीं। लेकिन उनके चित्र विषय ग्रामीण जनजीवन से संबंधित रहे। ऊपर के चित्र का नाम है 'शृंगार'। चित्र देखने पर समझ में आता है कि स्त्री को उन्होंने केवल सुडौल, सुंदर, आकर्षक नहीं दिखाया है। उन्होंने स्त्री के अंतर्मन तक पहुंचने की कोशिश की है। मानो ये महिलाएं किसी सहेली से बात कर रही हों, ऐसी संवेदनशीलता का भाव उनके चित्र में दिखाई देता है। यह चित्र देखते हुए हमें भी उसी संवदेनशीलता से शृंगार करने वाली स्त्री में झांकना पड़ेगा ठीक से, तभी हम उसको समझ सकेंगे।

एम.एफ. हुसैन

आपने गजगामिनी, मीनाक्षी फिल्में देखी हैं? चित्रकार एम.एफ. हुसैन का नाम इन फिल्मों की वजह से घर–घर में पहुंचा। चित्रकार हुसैन का बचपन बड़ी गरीबी में गुजरा। पंढरपुर गांव से मुंबई आया हुआ यह लड़का चलचित्रों के बड़े–बड़े इश्तेहार रंगता था।

आगे *प्रोगेसिव आर्टिस्ट ग्रुप* से उसका संबंध हुआ और इसी से उसका पूरा जीवन बदल गया। *प्रोगेसिव आर्टिस्ट ग्रुप* के बारे में बताना यहां बहुत जरूरी है। न्यूटन सुजा, एस.एफ. रजा, एच.ए. गाडे, सदानंद बाकरे और एम.ए.हुसैन इन सबने मिलकर शुरू किया इस ग्रुप को। यह स्वतंत्र भारत के कलाकारों का पहला संगठन था। इसमें से कई कलाकार फिर विदेशों में स्थापित हुए। गायतोंडे, सामंत, रायबा, हजरनीस ऐसे कुछ कलाकार इस संगठन में सहभागी हुए। इस ग्रुप के रजा, हुसैन, और गायतोंडे का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। विलक्षण बुद्धिमत्ता व कल्पना–शक्ति और बेजोड़ मेहनत के बल पर चित्रकार हुसैन का व्यक्तित्व बनता गया। बचपन से ही होर्डिंग के बड़े आकारों को रंगने की आदत की वजह से बड़ा चित्र बनाने का दबाव उनके मन में कभी आया ही नहीं। शुरू के दिनों में उन्होंने खुद की मिट्टी से, बचपन की यादों से, आजू–बाजू के लोगों से प्रेरित होकर चित्रों का निर्माण किया।

आगे चलकर वे राजकीय–सामाजिक घटनाओं पर आधरित विषय संबंधित चित्रों में व्यक्त करने लगे। मदर टेरेसा, जमीन, सरस्वती, घोड़े जैसी उनकी विविध चित्र–शृंखलाएं प्रसिद्ध हैं। इसमें घोड़े की चित्र–शृंखलाएं अपनी रेखाओं और रंग–योजना के कारण काफी मशहूर हुईं। अत्यंत स्फूर्त और जोशपूर्ण रेखाएं चित्र की विशिष्टताएं हैं। घोड़े का यह चित्र इसी शृंखला से लिया गया है। घोड़े की रफ्तार, उसकी ताकत, दौड़ते वक्त उसके भाव, मुड़ा हुआ पूरा शरीर? यह सब जोरदार रंग–लेपन से उन्होंने खूबी से दिखाया है। चित्र देखते वक्त मन में सवाल आता है कि घोड़े की जो रफ्तार है कहीं उसी रफ्तार से तो यह चित्र बनाया गया नहीं होगा?

रजा

भारतीय तत्वज्ञान और अभ्यास से जिनके विचार तैयार हुए और इन विचारों की अभिव्यक्ति जिनके चित्रों से हुई उन्हीं में से एक हैं रजा। इस किताब की शुरूआत में बिंदु के बारे में हमने पढ़ा है। बिंदु से रेखा और आकार तैयार होते हैं। केवल चित्रकला ही नहीं, सारे विश्व की उत्पत्ति बिंदु से हुई है इस संकल्पना का इन्होंने अभ्यास किया।

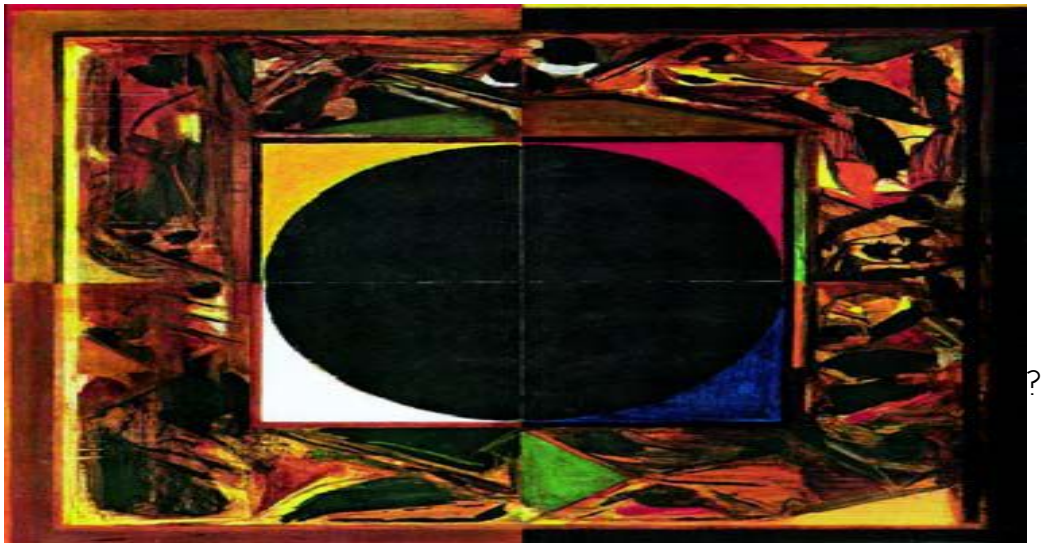

?

माध्यम– कैनवास पर तैलरंग, चित्रकार– रजा

प्रकाश देने वाले सूर्य का गोल, रात के चंद्रमा का गोल जैसी प्रतिमाएं इनके शुरू के चित्रों में दिखाई देती हैं। धीरे–धीरे सूर्य, चंद्र जैसे विशिष्ट संदर्भ जाकर केवल बिंदु या गोल अस्तित्व के रूपों में रजा के चित्रों में आने लगे। साथ ही त्रिकोण, चौकोर जैसे मूलभूत आकार और कभी–कभी इस सारे से जुड़ा हुआ भारतीय तत्वज्ञान का कोई लोक। जिसे आप देख रहे हैं यह चित्र भी ऐसे ही चित्रों में से एक है। इन्होंने जैसे त्रिकोण, चौकोर मूलभूत आकारों की योजना की, वैसे ही लाल, पीला, नीला जैसे शुद्ध रंगों का प्रयोग किया। इनका बचपन मुंबई में बीता और महाविद्यालय की पढ़ाई भी वहीं हुई। प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के शुरू के कलाकार सभासदों में से रजा भी एक कलाकार थे। बाद में वे पेरिस में स्थापित हो गए। आज भी यूरोप में रहकर वे भारतीय तत्वज्ञान पर आधारित कला–निर्मिति कर रहे हैं।

वी.एस.गायतोंडे

इस किताब की शुरूआत में हमने अमूर्त चित्र कैसे देखा जाए, उसे कैसे समझा जाए इसके बारे में थोड़ा–बहुत पढ़ा है। भारतीय कला–इतिहास में अमूर्त चित्रशैली के लिए चित्रकार गायतोंडे बड़ा ही जाना–माना नाम है। जैसा कि हमने पहले देखा है, अमूर्त चित्रों में कोई पहचानने लायक विशिष्ट प्रतिमा नहीं होती। यह चित्र तो केवल आकारों से बनता है। गायतोंडे के शुरू के चित्रों को छोड़कर लगभग सभी अमूर्त चित्र हैं। इनका कला शिक्षण मुंबई के सर जे.जे. कला महाविद्यालय में हुआ, लेकिन बाद में वे दिल्ली में रहने लगे। इसी वजह से उनकी कर्मभूमि दिल्ली रही। वे काफी चिंतन और मनन करते थे। उनका भारतीय अध्यात्म और बौद्ध–जैन तत्वविज्ञान का अभ्यास था। इसी अभ्यास से उनकी चित्रनिर्मिति हुई है। चित्र बनाने की प्रक्रिया उनके लिए मानो समाधि क्षण की अनुभूति होती थी। चित्र और उनके चित्र–विचार एकरूप हो जाते थे। इनके चित्रों में गहरे रंग की पृष्ठभूमि से धीरे–धीरे स्पष्ट होने वाले आकार दिखाई देते हैं। छापे गए चित्र रेखांकन को आप बहुत देर तक देखते रहेंगे तो आपको आकारों का खेल महसूस होगा। थोड़ी ही देर में आप इस चित्र के बारे में स्वतंत्राता से सोचने लगेंगे।

मनजीत बावा

भारतीय मिथकों पुराणकथा के संदर्भ के प्रति अलग ही दृष्टिकोण रखते हैं। मनजीत बावाका। इसको इन्होंने अपने चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। इनके चित्रों में देवी–देवताओं की विविध प्रतिमाएं अभिनव रूप में दिखाई देती हैं। उन्होंने शुद्धलाल रंग की पृष्ठभूमि पर एक पांव वाली गाय और छह हाथों वाले भगवान की आकृतियों की रचना की है। ऐसी विचित्रता–पूर्ण रचनाएं उनकी चित्र की निर्मिति की

विशेषता रही है। शुद्ध रंगों की योजना जैसे मनजीत बावा के चित्रों की खासियत है, वैसे ही भारतीय पौराणिक कथाओं के मिथक का अर्थ निकालकर उसे अपने चित्र में प्रस्तुत करना भी। कृष्ण, दुर्गा, शिव, गणेश, हनुमान जैसे विविध विषयों पर उनके द्वारा बनाए गए चित्र प्रसिद्ध हैं।

प्रभाकर बरवे

'मेंढ़े' वाला चित्र प्रभाकर बरवे की प्रसिद्ध किताब 'कोरा केनवास' से लिया गया है। बरवे के चित्रों में पत्थर, मिरची, पेड़, पशु, बीज, जैसे छोटी–बड़ी वस्तुओं के आकार दिखते हैं। 'निसर्ग के मूलाक्षर' नामक चित्र में अभी–अभी जमीन से ऊपर आया हुआ नन्हा पौधा, पेड़, पत्ता, पंछी, मछली, फल, फूल जैसे अनेक आकार हैं। आपने कभी आसमान में हाथी के आकार का बादल देखा है, या फिर पेड़ के पत्ते जैसे दिखने वाला मछली का आकार, या फिर किसी उबड़–खाबड़ बादल में चेहरा? ऐसे कई आभासी आकार इनके चित्रों में दिखते हैं। प्रकृति के प्रति गहरी श्रद्धा और खुद के चित्र से सच्चे रहे बरवे ने 'कोरा केनवास' नामक किताब में लिखा है, नाभि के मूल से पेंटिंग का जन्म होना चाहिए। वहां से निकले आकार भूख जितने ही सच्चे होते हैं।

भुपेन खक्कर

भुपेन खक्कर चित्रकार के तौर पर मशहूर नहीं थे। इनका जिक्र कला विचारक और समीक्षक के तौर पर होता है। भुपेन खक्कर गुजरात प्रांत के महत्त्वपूर्ण चित्रकार हैं। इनकी बहुत–सी चित्र प्रतिमाएं आम लोगों की आज की परिस्थिति के बारे में कहती थीं। इनके इस चित्र का नाम है 'गर्भावस्था में भक्त' (The Pregnant Devotee) इस चित्र की संकल्पना के बारे में उन्होंने एक जगह लिखा है, देवनंदन नामक उनक एक मित्र एक बार उनके घर आए। वे ठण्ड की सुबह में मोटी–सी चादर सर और पूरे शरीर पर लपेटकर हाथ में माला लिए जाप कर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा आभास होता था मानो सामने कोई स्त्री बैठी है। ऐसी ही बैठी अवस्था में भुपेन

जलरंग, चित्रकार– भूपेन खक्कर

खक्कर ने उनका चित्र बनाया। शरीर पर लपेटी यह चद्दर साड़ी जैसी लगती है और देवनंदन की तोंद गर्भावस्था की सूचना देती है। प्रातः पहर में हाथ में माला लिए कृष्ण नाम का जाप करने वाले देवनंदन पेट में भक्ति–रस से गर्भावस्था में हैं, ऐसा लगता था।

नसरीन मोहम्मदी

नसरीन मोहम्मदी के अमूर्त चित्रों पर जैन, बौद्ध और ताओ विचार प्रणाली का प्रभाव था। इन्होंने कुछ समय एम.एस. यूनिवर्सिटी, फकल्टी ऑफ फाईन आर्ट्स, बड़ौदा के कला महाविद्यालय में शिक्षक के रूप में काम किया था। चित्र बनी रेखाओं को केसे देखें, ऐसा प्रश्न आपके मन में उठना स्वाभाविक है। लेकिन अमूर्त चित्र इतनी आसानी से स्पष्ट नहीं होता। हां, अगर आपने नसरीन के छाया–चित्र देखे हों तो आपको उनकी चित्र बनाने की प्रक्रिया शायद समझ आए। उनके एक छायाचित्र में जमीन पर बारह बजे की धूप गिरी हुई दिखाई देती है। जमीन पर कोई एक सीढ़ी, जमीन पर रखी वस्तुओं का उपरी पृष्ठभाग और इनका खड़ा हिस्सा इतना ही हमें दिखता है। मतलब पृष्ठभाग पर पड़ी कड़क धूप और खड़े हिस्से की 'गहरी छांव' की केवल रेखाएं इस छायाचित्र में हैं। वह छाया–चित्र यहां छाप नहीं सके हैं, पर इस चित्र के रेखाओं की रचना भी ऐसे ही दृश्य से जुड़ी हुई है अर्थात् ऐसा चित्र केवल देखकर समझ लेना थोड़ा मुश्किल होगा। पर आप भी ऐसे ही नजरिये से अपने इर्द–गिर्द देखना शुरू करेंगे तो छाया–प्रकाश के इस लुभावने खेल में रेखाओं के कई दृश्य आपको भी जरूर दिखाई देंगे।

सुधीर पटवर्धन

'आम इंसानों के प्रति आत्मीयता रखने वाले और इंसानों के चित्रकार' ऐसी ही सुधीर पटवर्धन की पहचान है। इन्होंने महाविद्यालय में चित्रकारी की बाकायदा पढ़ाई नहीं की। पेशे से ये डॉक्टर हैं रेडियोलोजिस्ट। इनके चित्रों में इंसान के प्रति जो आत्मीयता दिखती है, इसका कारण इनकी वैद्य की शिक्षा और पेशा हो सकता है ऐसा इनका मानना है। इसके अलावा मार्क्सवादी आंदोलन में कुछ काल तक सहभागिता और मार्क्सवादी विचार–प्रणाली इनकी चित्रनिर्मिति की पूरक थी। यहां छपा हुआ चित्र केवल एक आरेखन है। 'मोर्चा की ओर' किसी मोर्चा से जुड़े हुए आदमी का स्केच है। गौर से देखें तो पता चलेगा कि उस आदमी के एक हाथ में लाठी है और इस लाठी पर उसके हाथों की मजूबत पकड़ है। एक पैर उपर उठाए वह रास्ता रोके खड़ा है। चेहरे पर उग्र भाव के साथ थोड़ी मायूसी छाई है। आम लोगों की मोर्चा और हड़ताल की वजह से होने वाली हालत का एहसास होता है। इनके अधिकांश चित्रों में आज के शहरी इंसान के दैनंदिन जीवन के विविध संदर्भ हैं।

चित्रकला को समझने के लिए हम एक साथ इस सफर पर चल पड़े थे। भीमबेटका गुफाओं के आदिमानव के चित्रों से हमने शुरूआत की। अब हम इसके अंतिम पड़ाव तक पहुंच गए हैं। भारतीय चित्रकला की यह लंबी कहानी, कई सदियों का यह सफर, पंचतंत्र की कथाओं जैसी सरस नहीं है। पर बुद्धि और मन को विस्मित रखने वाली जरूर है। इसकी कई महत्त्वपूर्ण घटनाएं हमने देखीं, पर और कई प्रकार के चित्र, उसकी कहानियां,शैली के बारे में हम जगह की मर्यादा के कारण यहां बता नहीं सकते। हम गुफा चित्रों से सीध अजंता चित्रों पर आ गए, और वहां से मुगल लघुशैली तक पहुंचे। अजंता चित्र शैली के बाद और मुगल लघुशैली से पहले मंदिर भित्ति चित्रों की बहुत बड़ी परंपरा भारत में रही है। आज भी दक्षिण के मंदिरों में और सिक्किम के पॅगोडा मंदिरों में मंदिर–चित्र दिखाई देते हैं। भारतीय कला इतिहास में लघुचित्र शैली भी महत्त्वपूर्ण है। इसके दो महत्त्वपूर्ण प्रकार भी हमने देखे। यह शैली आज भी अस्तित्व में है। आस्था हो तो नजदीकी कला–संग्रहालय में या आस–पास के गांवों में हम इन्हें खोज सकते हैं। क्या पता, ऐसी खोज में आज तक न मिला हुआ चित्र भी मिल जाए। राजा रवि वर्मा के बारे में हमने पढ़ा। पर उनका केवल चित्र देखकर मन नहीं भरता। उनके प्रति और जानने के लिए किताबों और कला संग्रहालय का सहारा लेना पड़ेगा। वही बात 'बंगाल शैली' के बारे में भी है। अवनीन्द्रनाथ के कई और सुंदर चित्रों की बातें रह गई हैं। नंदलाल बोस, असित कुमार हलधर, क्षितेंद्रनाथ मजूमदार इनके चित्र यहां छाप नहीं सके। उनकी परंपरा को आगे चलाने वाले गणेश पाईन, के.जी. सुब्रह्मण्यम जैसे अनेक चित्रकार और उनके चित्रों के बारे में जानना आपको जरूर अच्छा लगता है। यह सब जानते हुए भी किताब की मर्यादा को ध्यान में रखना पड़ा। लेकिन यहां कुछ और कलाकारों के नाम बताना जरूरी है। पेस्तनजी बोमनजी, एम.एफपिठावाला, एम.वी. धुरंधर, एल.एस. तासकर, एन.एस. बेंद्रे, ए.केहेब्बर ये सब पहले की पीढ़ी के व्यक्ति–चित्रकार, निसर्गचित्रकार और रचनाकार हैं। इनकी चित्रकृतियां भी बड़ी अच्छी हैं। गायतोंडे, रजा, बरवे, नसरीन मोहम्मदी, भुपेन खक्कर, मनजीत बावा से लेकरसुधीर पटवर्धन तक के चित्र हमने देखे। समकालीन चित्रशैली के अलग–अलग चित्र बनाने वाले चित्रकार और उनकी चित्रकृतियां समझने के लिए इन चित्रकारों को यहां अंतर्भूत किया गया है। इनके अलावा समीर मोंडल, रोबीन मोंडल, अंजली इला मेनन, रीनी धुमाल अतुल दोडिया, टी.वी. संतोष, रियाज कोमू, नलिनी मलानी, अकबर पदमसी जैसे अनेक कलाकारों के चित्र आप देख सकते हैं। ये चित्र देखने के लिए आप किताबों का, अखबार का और सबसे महत्त्वपूर्ण कलादालान की मदद ले सकते हैं। चित्र कैसे देखें, उसका रसग्रहण कैसे करें, कैसे समझें, इसके बारे में हमने शुरू में पढ़ा है। फिर भी शुरू–शुरू में चित्र–प्रदर्शनी देखते वक्त शायद मुश्किल लगेगी। लेकिन चित्र से बातें तो करो, वह भी आपसे दोस्ती का हाथ बढ़ाएगा।

मोर्चा की ओर, माध्यम– कागज पर रेखांकन चित्रकार– सुधीर पटवर्धन

भारतीय तत्वज्ञान कहता है, कोई भी कला अलौकिक आनंद देती है। मतलब कोई भी चीज अगर आप खरीदते हैं या मिलती है तो वह वस्तु–विषय का आनंद है लौकिक आनंद। पर कलानिर्मिति देखने से, सुनने से या निर्माण करने से जो आनंद मिलता है वह अलौकिक आनंद है आत्मा का आनंद यहां से आगे का सफर अब आपको तय करना है। बहुत चित्र देखने हैं, उन्हें समझने का आनंद भी लेना है। एक वाक्य याद आया, कहर कलाकार कोई खास इंसान नहीं होता, पर हर इंसान में एक खास कलाकार जरूर होता

है। आपके अंदर का ऐसा ही कोई जाना–अनजाना कलाकार प्रेरित होकर चित्र बना सकता है। आगे के चित्र–सफर के लिए आपको हार्दिक शुभकामनाएं।

प्रदत्त कार्य –

- भारतीय गायन में किन–किन वाद्य यंत्रों का उपयोग किया जाता है। इनके चित्रों का संकलन करें।
- गुप्तकाल में बनी कलाकृतियों (इमारतों, चैत्य, विहार, गुफा, स्तूप आदि) के चित्र एकत्रित करें। इनकी विशेषताओं सहित इन्हें बुलेटिन बोर्ड पर प्रदर्शित करें।
- छत्तीसगढ़ में स्थित संगीत विश्वविद्यालय पर एक संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करें।
- किसी एक ऐतिहासिक कलाकृति (इमारतों, चैत्य, विहार, गुफा, स्तूप आदि) के पर एक समीक्षात्मक रिपोर्ट तैयार करें। इसका उपयोग आप कक्षा शिक्षण में कैसे करेंगे।

इकाई – 4

कला शिक्षा : आकलन एवं मूल्यांकन

(Art Education : Assessment and Evaluation)

4.1 परिचय

4.2 आकलन व मूल्यांकन में अन्तर

4.3 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य

4.4 मूल्यांकन के मापदण्ड

4.5 कला शिक्षा में मूल्यांकन

4.6 कला शिक्षा में मूल्यांकन के विभिन्न उपागम एवं तकनीक

4.7 कला शिक्षा में संकेतक आधारित मूल्यांकन

4.8 मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल

4.1 परिचय

सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में बच्चों ने कितना सीखा, कहाँ उन्हें मदद की आवश्यकता है, यह जानने के लिए मूल्यांकन का सहारा लेना पड़ता है। मूल्यांकन सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के साथ–साथ बच्चों के सीखने की गति, ज्ञान, कौशल, व्यवहार आदि को जानने के लिए योजनाबद्ध रूप से साक्ष्यों का संकलन, विश्लेषण, व्याख्या और सुझाव देने की प्रक्रिया हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा – 2005 ने आकलन व मूल्यांकन की पारंपरिक परीक्षा प्रणाली में बदलाव का सुझाव दिया। पारम्परिक परीक्षा प्रणाली मुख्य रूप से पेपर–पेंसिल टेस्ट पर आधारित थी। इसमें रट कर सीखने और याद करने को महत्व दिया जाता था। इसका फोकस सिर्फ बच्चों के ज्ञान और समझ के स्तर को मापना था।

इसमें बच्चे के कौशलों, उच्च मानसिक क्षमताओं एवं समग्र व्यक्तित्व के विकास को कम महत्व दिया गया । इसमें समय–समय पर उपचारात्मक शिक्षण की कोई गुंजाइश नहीं थी। अतः मूल्यांकन की एक नई योजना संचालित की गई जिसे सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन या संक्षेप में सी.सी.ई. कहा गया । यह स्कूल आधारित मूल्यांकन प्रणाली हैं जो सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के साथ–साथ चलती है। यह योजना बच्चे के समग्र विकास पर ध्यान देती है। इसलिए इसमें शैक्षिक विषयों और समझ, कौशल, अभिवृत्ति, मूल्य आदि सह पाठ्यक्रम पहलुओं को शामिल किया गया है। मूल्यांकन की इस प्रक्रिया में इन पहलुओं का आकलन रचनात्मक (सीखने के दौरान) और योगात्मक (सीखने का) आकलन के माध्यम से किया जाता है। अंक और श्रेणी देने के स्थान पर ग्रेडिंग व्यवस्था एवं विवरणात्मक टिप्पणी को सिफारिश की गई है। इसके बारे में आप अन्य विषयों में भी पढेंगे।

4.2 आकलन व मूल्यांकन में अंतर –

आकलन – यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जो छोटे–छोटे उद्देश्यों के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए किसी एक पाठ के अध्ययन–अध्यापन के पश्चात् बच्चे क्या सीखेंगे। आकलन से शिक्षा संबंधी प्रक्रियाओं में निरंतर सुधार किया जाता है।

मूल्यांकन – यह विशिष्ट उद्देश्यों के लिए किया जाता है जैसे वार्षिक परीक्षा। मूल्यांकन के द्वारा भी शिक्षकों, पालकों एवं बच्चों को फीडबैक प्राप्त होता है। यह कक्षा उन्नति का भी आधार होता है।

4.3 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य –

- विभिन्न विषयों में निश्चित समय उपरांत बच्चों की प्रगति जानने हेतु।
- बच्चों के व्यवहार में हुए परिवर्तनों का पता लगाने हेतु।
- बच्चें की व्यक्तिगत और विशेष जरूरतों का पता लगाने हेतु।
- अधिक उपयुक्त तरीकों के आधार पर अध्यापन और सीखने की स्थितियों की योजना बनाने हेतु।
- कोई बच्चा क्या कर सकता है और क्या नहीं, उसकी किन चीजों में विशेष रूचि है, वह क्या करना चाहता है और क्या नहीं, इन सबके प्रति समझ बनाने और बच्चे की मदद करने हेतु।
- कक्षा में चल रही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर बनाने हेतु।
- बच्चे की प्रगति के प्रमाण तय कर पाना जिन्हें अभिभावाकों और दूसरों तक सम्प्रेषित किया जा सके।
- बच्चों में परीक्षा के प्रति व्याप्त भय को दूर करना और उन्हें स्वआकलन हेतु प्रोत्साहित करना।
- प्रत्येक बच्चे को सीखने और उसके विकास में मदद करना और सुधार की संभावनाएँ खोजना।
- नकल की प्रवृत्ति को रोकना एवं सृजनशीलता को बढ़ावा देना।

मूल्यांकन के प्रकार (Types of Evaluation) –

1. रचनात्मक आकलन (Formative Assessment) –

रचनात्मक आकलन, कक्षा शिक्षण, अधिगम प्रक्रिया का ही हिस्सा है। कक्षा शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में बच्चों को सीखने–सिखाने के पर्याप्त अवसर दिए जाते हैं जिससे बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण कर सकें। बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करके, गतिविधियों के माध्यम से, अपने अनुभव एवं गलतियाँ करके निरंतर सुधार करते हैं। बच्चे कितना सीख रहे हैं, सीखने की प्रगति कैसी हैं? बच्चे को कहाँ मदद की आवश्यकता है? शिक्षक कक्षा शिक्षण अधिगम के माध्यम से बच्चे का फॉरमेटिव आकलन करते हैं एवं बच्चे की आवश्यतानुसार उपचारात्मक शिक्षण करते हैं। इस प्रणाली में बच्चे का सतत् आकलन तो किया ही जाता है, साथ ही नियमित आकलन के आधार पर जाँच उपकरणों का चुनाव कर निर्धारित समयावधि में रचनात्मक आकलन का रिकार्ड संधारण भी किया जाता है। यह सीखने के दौरान (Assessment for learning) आकलन है ।

योगात्मक आकलन (Summative Assessment) –

योगात्मक आकलन प्रत्येक सेमेस्टर के अंत में किया जाता है। यह आकलन पेपर पेंसिल (लिखित) उपकरण की सहायता से निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर किया जाता है। शिक्षक प्रश्न बनाते समय इस बात की अवश्य ध्यान रखें कि प्रश्न–पत्र दक्षता आधारित हो रटने पर आधारित न हो। बच्चे के अनुभव, कल्पना–शक्ति, सृजनशीलता, तर्क करने, स्वतंत्र विचारों को रखने के लिए प्रेरित करें। जिसे हल करने में बच्चों को आनंद आए। प्रश्न बनाते समय शैक्षिक उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाए अर्थात् प्रश्न ज्ञान, अवबोध, कौशल एवं अनुप्रयोग पर आधारित हों जिसमें वस्तुनिष्ठ, अतिलघुउत्तरीय, लघुत्तरीय, दीर्घउत्तरीय प्रश्न सम्मिलित हों।

जिन मापदण्डों पर मूल्यांकन की नींव रखी जा सकती है। वे इस प्रकार हैं –

4.4 मूल्यांकन के मापदण्ड –

मूल्यांकन बच्चे के लिए न होकर, शिक्षक के लिए भी है –

मूल्यांकन बच्चे के लिए और शिक्षक के लिए भी है। इससे शिक्षकों को इन बातों पर समझ बनाने में मदद मिलती है कि बच्चे कैसे सीखते हैं। बच्चे को क्या चुनौतीपूर्ण लग रहा है। बच्चे कितना सीख पाये हैं। शिक्षण योजना में किस तरह की सुधार की आवश्यकता है। विभिन्न स्तर के बच्चों को किस तरह से सिखाया जाए, बच्चों की रूचि–अरूचि का पता लगाना, बच्चों के मूल्यों, कौशलों जैसे – सृजनात्मक क्षमता, अभिनय क्षमता, नेतृत्व क्षमता, समूह में कार्य करना आदि विभिन्न पहलुओं का पता लगाने के लिए शिक्षक को बच्चों का मूल्यांकन करना पड़ता है।

मूल्यांकन प्रक्रिया आधारित है –

जैसा कि पहले भी कहा गया है, मूल्यांकन रचना का नहीं, रचना करने की प्रक्रिया का होना चहिए। जैसा कि हम पिछले अध्यायों में यह समझ चुके हैं कि बच्चे का सीखना उसकी कला से अंतक्रिया के दौरान अनुभवों, कुछ नया रचने का प्रयत्न, चुनौतियों से साक्षात्कार और फिर उसका हल ढूँढ़ने से है। न कि अन्त में बनने वाली कलाकृति या रचना से हैं।

मूल्यांकन के पैमाने –

मूल्यांकन विभिन्न पैमानों पर बच्चों की विकास की प्रक्रिया को जाँचता हैं। ये पैमाने कौशल हो सकते हैं। इस मापदण्ड का आधार पिछला बिन्दु है जहाँ इस बात पर जोर दिया गया कि मूल्यांकन प्रक्रिया का होना चाहिए, न कि रचना का। अब मूल्यांकन को सीखने–सिखाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया से जोड़ना होगा। इससे उन समस्याओं के बारे में समझ बनेगी जिनका बच्चों से अक्सर साक्षात्कार होता है और आगे के लिए योजना बनाने में भी मदद होगी।

मूल्यांकन प्रतिस्पर्धा केन्द्रित नहीं है –

मूल्यांकन का उद्देश्य प्रतिस्पर्धा नहीं है। जैसा कि पहले भी चर्चा की गई हैं कि हर बच्चा अपने आप में विशिष्ट होता है। इसलिए एक की तुलना दूसरे से करना निर्रथक है। हर बच्चा अनुभवों की एक कड़ी से गुजर रहा होता है जिससे उसका नजरिया विकसित होता है। इस बात का ख्याल मूल्यांकन करते दौरान होना जरूरी है। मूल्यांकन कुछ ऐसा होना चाहिए जो बच्चे के विकास को उसी के विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में माप सके। हर बच्चा अपनी रफ्तार से चीजों को ग्रहण करता है व सीखता है। मूल्यांकन के प्रति ऐसी समझ बच्चे को अपनी तरह व अपनी गति से सीखने का अवसर देगी।

मूल्यांकन सतत् और निरंतर हो –

आकलन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है कि मूल्यांकन सतत् व निरंतर हो। बच्चा हर समय कुछ न कुछ सीख रहा होता है, उसका अवलोकन नियमित रूप से करना उसका रिकार्ड रखना और आवश्यकतानुसार प्रतिपुष्टि देना। ये कार्य नियमित (प्रत्येक दिन) होने चाहिए जिससे बच्चे की प्रगति के बारे में आसानी से पता लगाया सके।

स्वयं का एवं साथियों का मूल्यांकन –

स्व–मूल्यांकनः– कोई भी मूल्यांकन पद्धति बिना स्व–मूल्यांकन व साथियों के मूल्यांकन के बिना अधूरी है। यहाँ एक वाजिब सवाल उठता है कि उसी उम्र के और उसी संज्ञानात्मक स्तर के बच्चे कैसे अपनी सह–पाठियों का मूल्यांकन कर सकेंगे। इसलिए, यहाँ यह समझने की जरूरत है कि 'साथी के मूल्यांकन' की अहमियत क्या है। सामान्यतः बच्चा अपने साथी को कई मायनों में शिक्षक से ज्यादा जानता है। जैसे–उसके विशिष्ट गुण–गाना, नृत्य करना, चुटकुले सुनाना आदि। इसके अलावा इस अभ्यास से कक्षा में सहयोग–आधारित शैक्षिक वातावरण बनाने में मदद मिलेगी और समूह में अध्ययन को प्रोत्साहन मिलेगा।

स्व– मूल्यांकन तो किसी भी कारगर शिक्षण प्रक्रिया के लिए जरूरी है। सीखने वाले को अपने सीखने के बारे में जागरूक होने से मदद मिलती है। इससे बच्चा जीवन भर अपने सीखने का स्वयं ही मूल्यांकन कर पाने में सक्षम हो जाता है।

मूल्यांकन पर टिप्पणी –

मूल्यांकन का उद्देश्य सीखने को परखना नहीं बल्कि सीखने को प्रोत्साहित करना है। ऐसा कारगर रूप से करने के लिए बच्चों को मूल्यांकन के आधार पर टिप्पणी देना बहुत जरूरी है। इस तरह बच्चे (learner) और शिक्षक (mentor) सीखने के बेहतर अवसर व माध्यम तलाश सकते हैं। साथियों की सह–पाठियों की टिप्पणी भी इस प्रक्रिया में शामिल हैं। इस मूल्यांकन से निकलने वाले निष्कर्ष योजना के कार्यों को ठोस आधार देते हैं।

चर्चा करें –

आप अपने विद्यालय के अध्यापक व अध्यापिकाओं से निम्नलिखित प्रश्नों पर चर्चा करें :

- कला शिक्षा में मूल्यांकन क्यों किया जाना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।
- कला शिक्षा में मूल्यांकन के विभिन्न मापदण्डों को जानना क्यों आवश्यक हैं? क्या इसके बिना भी मूल्यांकन किया जा सकता हैं? अपना मत स्पष्ट कीजिए।
- मूल्यांकन व परीक्षा में आपके हिसाब से क्या अन्तर हैं?

4.5 कला शिक्षा में मूल्यांकन

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 – कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र में यह सुझाव दिया गया है कि कला शिक्षा में गैर–प्रतियोगी और गैर–तुलनात्मक आधार पर समय–समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए जिससे बच्चों के प्रदर्शन में सुधार का आकलन किया जा सके। बच्चों के प्रर्दशन में ऊर्ध्व वृद्धि (Vertical Growth) की समीक्षा आवश्यक है। मूल्यांकन के मानकों का अलग–अलग स्तर के लिए विस्तार से मार्गदर्शन यहाँ दिया गया है।

4.5.1 पूर्व प्राथमिक स्तर

इस स्तर पर मूल्यांकन विवरणात्मक होना चाहिए जिसमें बच्चों के विकास और व्यवहार का वर्णन हो। शिक्षा के इस स्तर पर भाषा, संख्या और जीवन के संदर्भ में साधारण विचारों इत्यादि को कला के माध्यम से पढ़ाया जा सकता है। अतः विद्यालय में बिताए घण्टों में बच्चों की सभी गतिविधियों का आकलन किया जाना चाहिए। यह अच्छा रहेगा यदि शिक्षक मुक्त अभिव्यक्ति और सृजनात्मकता पर पूरे सत्र में निरंतर बल दे और बच्चों का आकलन उसके स्वयं के विकास से करे न कि कक्षा के अन्य बच्चों के तुलनात्मक संदर्भ में क्योंकि तुलना करने पर बच्चों के अंदर की रचनात्मकता समाप्त होती है। आत्म–विकास के लिए प्रतियोगिता से ज्यादा बच्चों को अधिक उत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।

मूल्यांकन

- कोई परीक्षा नहीं।
- प्रक्रिया आधारित
- मानदण्ड आधारित
- गैर प्रतियोगी
- निरंतर और व्यापक

4.5.2 प्राथमिक स्तर –

प्राथमिक स्तर से उच्च माध्यमिक स्तर तक मूल्यांकन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है जिसे वर्ष भर में किया जाना चाहिए। हर सत्र में निम्न बिंदुओं के मापन–स्तर पर विद्यार्थियों के कार्य का आकलन किया जा सकता

है। (प्रत्येक सत्र में):

- ध्यान से देखते हुए सीखना (अवलोकन)।
- सहजता और मुक्त अभिव्यक्ति।
- अलग–अलग गतिविधियों में भाग लेने की रुचि।
- प्रत्येक बच्चे का समूह कार्य में भाग लेना।

4.5.3 उच्च प्राथमिक स्तर

बच्चों द्वारा किए गए कार्य का समय–समय पर आकलन किया जाना चाहिए जो उनके प्रगति–पत्र में निम्नलिखित चार या पाँच बिंदुओं वाले मापक पर दिखाया जाना चाहिए:

- विद्यार्थियों की भागीदारी।
- सामाजिक मेल–जोल।
- कला और अभिकल्पना के बुनियादी तत्वों/सिद्धान्तों के प्रति विचार की संवेदनशीलता का विकास और समझ।
- प्रयुक्त माध्यमों को समझने में दक्षता।
- अलग–अलग माध्यमों को लेकर प्रयोग करना।

गतिविधि –

- कला शिक्षा में मूल्यांकन गैर प्रतियोगी और गैर–तुलनात्मक क्यों होना चाहिए, अपने विचार लिखें।
- कला शिक्षा में मूल्यांकन तकनीक की कितनी उपयोगिता हैं? व्याख्या कीजिए।
- कला विधा के किसी एक विषय पर अपने कक्षा में किसी पाँच बच्चों की एक अवलोकन रिपोर्ट तैयार कीजिए।
- कला शिक्षा मूल्यांकन में प्रदर्शन तकनीक का उपयोग किया प्रकार किया जा सकता हैं? अपने अनुभव के आधार पर एक लेख तैयार कीजिए।

4.6 कला शिक्षा में मूल्यांकन के विभिन्न उपागम एवं तकनीक –

कला में मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित उपागम एवं तकनीक का उपयोग किया जा सकता हैं –

4.6.1 अवलोकन (Observation) –

बच्चों के बारे में जानकारी सहज परिवेश में इकट्ठी करनी चाहिए। शिक्षार्थी के बारे में कुछ सूचनाएं पढ़ाने के दौरान किए गए अवलोकन के आधार पर प्राप्त की जा सकती है। कुछ सूचनाएं विद्यार्थियों के पूर्व नियोजित और अर्थपूर्ण अवलोकन पर भी आधारित हो सकती हैं। अवलोकन अवधि विशेष में भिन्न–भिन्न गतिविधियों और परिवेशों में किया जाना चाहिए। अवलोकन निम्नलिखित चार तरीकों से किया जा सकता हैं –

सीधे/प्रत्यक्ष अवलोकन – जब बच्चे कार्य कर रहे हो तब अवलोकन किया जा सकता है।

अप्रत्यक्ष अवलोकन – इस तरह का अवलोकन बच्चों के द्वारा किये गए कार्यों संबंधी प्रपत्रों पोर्टफोलियों, प्रदत्तकार्य, परियोजना कार्य आदि के द्वारा किया जा सकता हैं।

अनौपचारिक अवलोकन– इस तरह का अवलोकन जब बच्चे कार्य कर रहे होते हैं तो बच्चों से बातचीत कर दिया जा सकता है कि कैसे वे अपनी समझ को प्रदर्शित करेंगे। इस तरह की बातचीत में दूसरे बच्चे भी भाग लेते हैं, इससे शिक्षक को प्रत्येक बच्चे का व्यक्तिगत अवलोकन करने का मौका मिलता है।

औपचारिक अवलोकन –

औपचारिक अवलोकन क्षमता आधारित होता है जिसमें विभिन्न कलात्मक कार्य शामिल है जैसे – मिट्टी से कुछ बनाना, लकड़ी से कुछ बनाना, अनुपयोगी वस्तुओं से कोई सामग्री बनाना आदि। इसमें प्रक्रिया व उत्पाद दोनों का अवलोकन किया जा सकता हैं।

4.6.2 प्रदत्तकार्य (Assignments) –

कक्षा कार्य तथा गृहकार्य के रूप में विषय–वस्तु प्रकरण (थीम) पर आधारित कार्य करवाए जाने चाहिए। यह Open Ended विकल्प सहित या संरचनात्मक भी हो सकते हैं। पाठ्यपुस्तकों से बाहर के प्रसंगों पर भी आधारित हो सकते हैं। बहुत अधिक गृहकार्य या कक्षा कार्य नहीं दिया जाना चाहिए। प्रदत्त कार्यों की प्रकृति इस तरह की होनी चाहिए कि विद्यार्थी उन्हें स्वयं कर सकें।

4.6.3 परियोजनाएँ (Projects) –

एक सत्र में बहुत–सी परियोजनाएँ करवाई जा सकती हैं, आमतौर पर इन परियोजनाओं के माध्यम से आँकड़ो का संग्रह और विश्लेषण किया जाता है, सीखने की प्रक्रिया में परियोजनाएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इनकी प्रकृति कुछ इस प्रकार होनी चाहिए कि विद्यार्थी इसे स्वयं कर सकें। परियोजनाओं में प्रयुक्त सामग्री विद्यालय, आस–पड़ोस या घर पर सहज उपलब्ध होने वाली हो।

4.7.4 पोर्टफोलियो (Portfolio) (विद्यार्थी फाइल) –

समय की एक निश्चित अवधि में विधार्थी द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह, ये रोजमर्रा के काम भी हो सकते हैं या फिर विद्यार्थी के कार्य के उत्कृष्ट नमूने भी हो सकते हैं। इसमें सभी तरह के प्रपत्र, विषय–वस्तुओं को शामिल करने की जरूरत नहीं है, अन्यथा प्रबन्ध करना मुश्किल हो जाएगा। पोर्टफोलियों में बच्चे द्वारा किए कार्यों संबंधी साक्ष्य (प्रपत्र) को रखने के साथ उस पर प्रतिबिंबात्मक टिप्पणियाँ कर देनी चाहिए। जिससे बाद में कभी टिप्पणियों के संबंध में निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पोर्टफोलियो से सभी बच्चों के रिकार्ड आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं और इस प्रकार उपलब्ध रिकार्ड से बच्चे के किसी भी कौशल या ज्ञान के विकसित होने की तस्वीर स्पष्ट होती जाती है। बच्चे इसके माध्यम से अपनी स्वयं की प्रगति और अधिगम के बारे में दूसरों को बताने में सक्षम हो सकते हैं। इसके माध्यम से बच्चे सीखने और अधिगम की प्रक्रिया के सबसे अधिक क्रियाशील सदस्य बन जाते है। पोर्टफोलियो के द्वारा शिक्षक को प्रत्येक बच्चे के अधिगम स्तर का पता आसानी से चल जाता है इस प्रकार शिक्षक बच्चे के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

पोर्टफोलियो के लिए विषयवस्तु का चयन करते समय विधार्थियों की भागीदारी को भी प्रोत्साहित करना चाहिए साथ ही साथ विषयवस्तु के चयन के लिए इस्तेमाल किए गए मापदण्डों के बारे में भी सलाह लेनी चाहिए जिससे बच्चों का उस विषयवस्तु के प्रति सकारात्मक सोच विकसित हो सके। बच्चों के अधिगम स्तर के बढ़ने के साथ–साथ पोर्टफोलियो में नयापन लाना चाहिए ताकि बच्चे को उबाऊपन का एहसास ना हों। संदर्भ के लिए विषयवस्तु पर लेबलिंग करना, उस पर प्रतिबिम्बात्मक टिप्पणी करना और उस पर संख्या डालना चाहिए ताकि सही रिकार्ड सही समय पर उपलब्ध हो सकें। पोर्टफोलियों के प्रत्येक रिकार्ड पर बच्चे के व्यवहार सम्बन्धी टिप्पणी लिखनी चाहिए ताकि मूल्यांकन करते समय कोई कठिनाई ना हो और बच्चे के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाल सके।

गतिविधि –

- बच्चों का पोर्टफोलियो बनाना मूल्यांकन के लिए किस प्रकार उपयोगी होता है इस पर अपने कक्षानुभव के आधार पर एक लेख तैयार कीजिए।

4.6.5 चेक लिस्ट (Checklist) (जाँच सूची) –

किसी खास व्यवहार/क्रिया को सुव्यवस्थित तरीके से दर्ज करने पर वह बच्चे की किसी खास विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित करने में मदद करते हैं। चेक लिस्ट बनाते समय यदि उसमें टिप्पणी का स्थान रखा जाए तो वह सूचनाओं को व्यापक रूप दे सकता है। इसका उपयोग आकलन की दूसरी विधियों के साथ सहायक के रूप में किया जा सकता हैं।

4.6.6 रेटिंग स्केल (Rating Scale) (श्रेणीबद्ध पैमाना) –

इसका इस्तेमाल विद्यार्थी के काम की गुणवता दर्ज करने और निर्धारित मानदण्डों के आधार पर गुणवत्ता तय करने के लिए किया जा सकता हैं। समग्र रूप से तैयार रेटिंग स्केल एक अकेले काम के एक अंश का पूरा आकलन कर सकता है। अवलोकन करते समय संवेदनशील बने, अवलोकन समय की भिन्न–भिन्न अवधियों और अलग–अलग गतिविधियों तथा परिवेश में किया जाना चाहिए ताकि विकास के विभिन्न पहलुओं का आकलन किया जा सकें। इस दौरान बच्चों के अनुभव को भी नोट किया जा सकता है व उपचारात्मक टिप्पणियाँ भी दी जा सकती हैं।

4.6.7 घटना वृत्तांत व संचयी रिकार्ड (Anecdotal records) –

इस उपागम का उपयोग बच्चे के जीवन में हुई महत्वपूर्ण घटनाओं, जिनका अवलोकन किया गया हो के वर्णनात्मक रिकार्ड प्रस्तुत करने में किया जा सकता हैं। कक्षा में घटित होने वाली बहुत रूचिकर/मजेदार घटनाओं का वर्णन इसमें किया जा सकता है। इसमें घटनाओं का वर्णन ही किया जाना चाहिए टिप्पणी देने या अपना मत रखने से बचना चाहिए।

4.6.8 प्रदर्शन (Display) –

इसका उपयोग बच्चे के द्वारा किए गए कार्यों को प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता हैं। कार्यों के प्रदर्शन के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव शिक्षक अपनी सुविधानुसार कर सकते है जहाँ पर दृश्य कला का प्रदर्शन आसानी से हो सके। प्रदर्शन कला के प्रदर्शन के लिए विद्यालय का कोई भी उपयुक्त जगह का चुनाव किया जा सकता है। इससे बच्चे को कला का प्रदर्शन करने का मौका समान होना चाहिए।

4.6.9 साक्षात्कार (Intervies) –

बच्चे के साथ साक्षात्कार करने से शिक्षक बच्चे की समझ, अनुभव, व्यवहार, रूचि, प्रेरणा और सोच की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। बच्चे का साक्षात्कार मूल्यांकन के विभिन्न तकनीक का उपयोग करते समय किया जा सकता हैं जैसेः– अवलोकन करते समय, रेटिंग स्केल भरते समय, जाँच सूची का उपयोग करते समय और स्व–मूल्यांकन करते समय। छोटे बच्चों के साथ साक्षात्कार आसान और सरल तरीके से किया जा सकता है जिसमे कठिनाई स्तर कम हो और जो इन्हें आसानी से समझ आ सकें।

गतिविधि

अपने अध्ययन केन्द्र पर निम्नलिखित प्रश्नों पर चर्चा करें :

- मूल्यांकन से प्राप्त सूचना शिक्षक के लिए उपयोगी होती है तो वह इसका उपयोग अपने कार्यों में किस प्रकार कर सकता हैं?

4.7 कला शिक्षा में संकेतक आधारित मूल्यांकन –

बच्चे जब कला में भाग ले रहे होते हैं तो उसमें उनके अनेक अनुभव शामिल होते हैं, इसलिए कला में उनके आकलन में समग्रता होनी चाहिए। इसके लिए बच्चे द्वारा बनाई या तैयार किए गए कला उत्पाद का अन्तिम रूप में दोनों का आकलन करना आवश्यक है तभी बच्चे के सीखने के बारे में कोई राय बनाई जा सकती है। प्रक्रिया के अंतर्गत हम कई तरह का अवलोकन कर सकते हैं। जैसे बच्चे की खोजी प्रवृति, किसी काम को जारी रखने की कोशिश, अपने काम को आत्मसात करने का गुण, अपनी कला के माध्यम से अपने विचार और भावना व्यक्त कर पाना, अपने और दूसरों के प्रति जागरूकता, सृजनशीलता का परिचय देना, अपने और दूसरे के अनुभवों को विश्लेषित करना और कलात्मक उत्पाद या प्रस्तुतियों के गुण–दोष बता पाना/कला का आकलन मुख्यतः प्रक्रिया आधारित है इसलिए बच्चे द्वारा किए जा रहे अवलोकन, अन्वेषण, सहभागिता और अभिव्यक्ति निर्णायक तत्व बन जाते हैं। कोई गाना याद हो जाना या कोई नाटक तैयार करके दिखना आकलन का आधार नहीं हो सकता क्योंकि उसमें सीखने के कई सोपान अनदेखे रह जाते हैं।

यहाँ कला में आकलन के लिए कुछ संकेतक दिए जा रहे हैं और साथ ही उनके बढ़ते स्तर भी दिये जा रहे हैं। ये संकेतक सभी प्रकार की कलाओं के लिए समान रूप से प्रयोग नहीं किये जा सकते हैं। अलग–अलग संकेतकों की अलग–अलग गतिविधि या कक्षा में प्रयोग करना ज्यादा व्यवहारिक होगा। एक ही कक्षा या अवधि में आवश्यक नहीं है कि कोई बच्चा तीनों स्तरों में हो।

यह तीनों स्तर एवं संकेतक निम्न टेबल में दर्शाए गए हैं –

संकेतक	स्तर एक	स्तर दो	स्तर तीन
चिंतन, विचार निर्माण (Reflect\To think deeply)	वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक	विचारशील	पुनर्रचनात्मक
प्रतिक्रिया (Response)	उदासनी	संबंध, रूचि रखने वाला	विश्लेषणात्मक
मूल्य (Value)	मान्य	मूल्य का महत्व स्वीकार	समर्पित
सहभागिता (Engage)	व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं	पूरे ध्यान से	आनंदपूर्वक
समझ (Perceive)	ध्यान लगाना	मगन हो जाना	बारीकियों पर ध्यान देना
अभिव्यक्ति (Express)	अनुकरणात्मक	प्रयोगात्मक	अनुठाअनुपम/सृजनात्मक मौलिकता

दिए गए संकेतक शिक्षक की कई तरह से मदद कर सकते हैं जैसे –

सीखने की निरन्तरता को ध्यान में रखते हुए बच्चों के सीखने की बेहतर समझ और उसे केन्द्र में रखना।

पर्यवेक्षण, अधिगम और प्रगति को रिपोर्ट करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं।

अभिभावकों, बच्चों और कई दूसरों के लिए बच्चों की प्रगति को आसान तरीके से समझने के लिए संदर्भ बिंदु की तरह कार्य करते हैं।

इन संकेतकों के आधार पर गुणात्मक टिप्पणियाँ भी तैयार की जा सकती हैं जैसे बच्चों द्वारा किए

गए कार्य के प्रति यह कितना उपयुक्त है – स्वीकार्य, महत्वपूर्ण और रूचिकर। बहुधा यह देखा जाता है कि विद्यार्थी को 'अ' या 'ब' के द्वारा उसके उत्तर/प्रतिक्रिया को चिन्हित किया जाता है। जिससे विद्यार्थी के साथ किसी भी तरह की अंतःक्रिया शामिल नहीं होती।

4.7.1 दृश्यकला एवं प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के लिए संकेतक का उपयोग –

प्रत्येक बच्चे में अपने विचारों को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति प्रदान करने की कुछ अंतर्निहित योग्यताएं होती हैं। अतः बच्चे की अभिव्यक्ति को मुख्य निष्कर्ष समझा जाता है। लेकिन इस दृष्टिकोण का जटिल पक्ष यह है कि बच्चों के अनुभव व विचारों की भिन्नता के कारण एक ही विषय पर की गई अभिव्यक्ति में भिन्नता देखने को मिलती है साथ ही शिक्षक की दृष्टि भी अलग–अलग हो सकती हैं जैसे– सौंदर्यबोध, रंग योजना और सृजनशीलता के बारे में प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग–अलग होता है। इसी प्रकार प्रदर्शन कला में शिक्षक को अलग–अलग शैली या तरीका पसन्द आ सकता हैं जो बच्चे के आकलन को प्रभावित कर सकता है। आकलन में जटिलता तब और बढ़ जाती है जब उसमें परस्पर तुलना करने के लिए भी कोई आध ाार नहीं होता है। प्रदर्शन कला के अन्तर्गत भी प्रत्येक बच्चे का अपना तरीका, अपनी पसन्द आदि विशेषता होती है। अतः यहाँ हर बच्चे को उसकी सृजनात्मकता का विश्लेषण करते हुए उसके समग्र प्रभाव को देखा जाना चाहिए। साथ ही उम्र के आधार पर अवलोकन, प्रदर्शन एवं प्रस्तुति की क्षमता के साथ उसकी संलग्नता एवं रूचि को भी आकलित किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर बच्चों का कला–कौशल कार्य के दौरान आयु अनुसार स्वभाविक रूप से बढ़ता जाएगा। उसको बढ़ाने के प्रयास व उसको जाँचने पर जोर नहीं देना चाहिए नहीं तो कला कार्यों में संलग्न बच्चों का आनन्द गायब हो जाएगा।

कलाओं के संदर्भ में कला प्रक्रिया का अत्यन्त महत्व है। बने हुए चित्र का जितना महत्व है उससे अधिक महत्व चित्र बनाने की प्रक्रिया का है और उस दौरान बच्चों के मनोभाव, मनःस्थिति, अनुभूति, दृ ष्टिकोण, समझ, उनकी जागरूकता, कौशलों का प्रयोग, विश्लेषण का तरीका, समालोचना आदि तत्व जो कि चित्र बनाने की प्रक्रिया के दौरान ही देखे जा सकते हैं उनका भी आकलन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रदर्शन कला के विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत प्रदर्शन करने की प्रक्रिया के दौरान ही उसकी विशेषताओं, गुणवत्ता का आकलन किया जा सकता है या ये कहें कि प्रदर्शन कला का अस्तित्व प्रदर्शन कला की प्रक्रिया के दौरान ही जीवन्त रूप से देखा जा सकता है। बच्चे की मनःस्थिति, मनोभाव, अनुभूति, प्रदर्शन का तरीका, शैली, प्रदर्शन में बौद्धिकता का इस्तेमाल, जागरूकता, कौशल का प्रयोग, सौन्दर्य का सृजन, कला सृजन आदि को प्रक्रिया के दौरान ही देखा जाना चाहिए। यह समझते हुए कि कला की प्रकृति के अनुसार प्रक्रिया के दौरान ही उसकी विशिष्टता एवं जीवन्तता दिखाई देती है, इसलिए कलाओं के मामले में प्रक्रिया के दौरान सतत् अवलोकन, आकलन की दृष्टि से अपेक्षाकृत और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

दृश्यकला और प्रदर्शन कला में बच्चे के सीखने के दौरान व उसके द्वारा अभिव्यक्ति के आधार पर अवलोकन करते हुए शिक्षक, अधिगम के अन्य कई क्षेत्रों का आकलन भी कर सकते हैं। लेकिन यह उनकी दृष्टि पर निर्भर करेगा कि उनकी दृष्टि कितनी विकसित हुई है। मूल्यांकन के संदर्भ में व्यापक दृष्टि का निर्माण तभी हो सकता है जब शिक्षक लम्बे समय तक कला शिक्षा से जुड़े रहे एवं स्वयं के स्तर पर नियमित रूप से कला सृजन, चिंतन एवं अध्ययन करते रहें।

दृश्यकला में मूल्यांकन हेतु दो संकेतकों को चुना जा सकता हैं –

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता

सहभागिता को जानने के लिए हमें बच्चे का अवलोकन कार्य के दौरान करना होगा जिसमें देखना

होगा कि बच्चा गतिविधि से शारीरिक व मानसिक रूप से जुड़ पा रहा है या नहीं। गतिविधि के दौरान बच्चों के जुड़ाव में सहभागिता के तीन स्तरों (जैसा कि टेबल में दिया गया हैं) को देखा जा सकता है।

स्तर 1 – व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं

स्तर 2 – पूरे ध्यान से

स्तर 3 – आनंदपूर्वक

आंशिक रूचि से लेकर आनन्द के साथ सहभागिता तक के इस प्रयास को शिक्षक कला कालांश में कार्य के दौरान बच्चों की गतिविधि पर यदि पैनी नजर रखें तो कार्य के सुचारू होने से समाप्त होने तक सहभागिता के उपयुक्त लक्षणों को देखा जा सकता है और अवलोकन के दौरान ही बच्चे की स्थिति को अपनी डायरी/रजिस्टर में समीक्षात्मक टिप्पणी के रूप में लिख सकते हैं।

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

विद्यालयों में बच्चों द्वारा अभिव्यक्ति अनुकरण से लेकर मौलिकता के मध्य कई चरणों से गुजरती है। अब देखना यह है कि इस स्तर पर बच्चा स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए मस्तिष्क में संग्रहीत दृश्य कला बिम्बों को नये रूप, विचार के साथ सृजनात्मक अभिव्यक्ति करता है या पिछली कार्य शैली में कुछ नये प्रयोग करते हुए अभिव्यक्ति करता है या फिर दूसरों की कृति से प्रेरित होकर उसे हूबहू बनाने में रूचि रखता हैं। अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जा सकता है

स्तर 1 – अनुकरणात्मक ।

स्तर 2 – प्रयोगात्मक

स्तर 3 – अनूठा अनुपम/सृजनात्मक मौलिकता

पहला तरीका यह है कि कला कालांश के दौरान अवलोकन करते हुए पैनी नजर से अभिव्यक्ति के स्तर को जाना जा सकता है और दूसरा तरीका है कि बच्चों के कार्य पत्रक का पोर्टफोलियो तैयार करना जिसमें दिनांक के हिसाब से कार्यपत्रकों को क्रमबद्ध ढंग से रखा गया हो। जिससे पोर्टफोलियो देखने पर भी बच्चे के कार्य की प्रगति देखी जा सकें। सृजनात्मकता को जाँचने के लिए बच्चों के चित्र पर कार्य के उपरान्त कक्षा में उसी समय बातचीत करते हुए विचार को समझा जा सकता है। इसी प्रकार प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति वाले बच्चे के कार्य का पता भी अवलोकन के आधार पर ही लगाया जा सकता है। लेकिन अनुकरणात्मक अभिव्यक्ति का आकलन संधारित कृतियों के आधार पर किया जा सकता है और कार्य के दौरान अवलोकन के आधार पर भी किया जा सकता है।

प्रदर्शनकला में मूल्यांकन हेतु तीन संकेतकों को चुना जा सकता हैं –

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

तीसरा मूल्यांकन संकेतक– प्रतिक्रिया

पहला मूल्यांकन संकेतक– सहभागिता

स्तर 1 – व्यस्त लेकिन अधिक ध्यान नहीं

स्तर 2 – पूरे ध्यान से

स्तर 3 – आनंदपूर्वक

बच्चे की सहभागिता का आकलन कक्षा कक्ष में कार्य करने के दौरान ही देखा जा सकता है। शिक्षक जब कोई गीत/कविता खुद गाकर बच्चों को भी साथ–साथ गाने के लिए कह रहे होंगे और बच्चे गा रहे होंगे, उसी समय बच्चों की उस गीत में सहभागिता को आंका जा सकता है कि बच्चे आनन्द के साथ उस गतिविधि में शामिल होकर भी आनन्द नहीं ले पा रहे हैं या फिर कुछ बच्चों को यह कम रूचिकर लग रहा हैं। शिक्षक उसी समय बच्चों का अवलोकन करते हुए अपनी डायरी में बच्चों के लिए टिप्पणी दर्ज कर सकते हैं। जब संगीत की दूसरी गतिविधि करवाएंगे उस समय भी शिक्षक को यही प्रक्रिया अपनानी होगी। टेप द्वारा भी संगीत सुनाकर बच्चों का अवलोकन किया जा सकता है व उसी समय बच्चे की सहभागिता को दर्ज किया जा सकता है। अगर कक्षा में बच्चे ज्यादा हैं तो आधे–आधे बच्चों को भी संगीत सुनाकर अथवा गीत गवाकर अवलोकन किया जा सकता हैं।

दूसरा मूल्यांकन संकेतक– अभिव्यक्ति

स्तर 1 – अनुकरणात्मक

स्तर 2 – प्रयोगात्मक

स्तर 3 – अनूठा, अनुपम, सृजनात्मक, मौलिकता

इस बिन्दु का मूल्यांकन करने के लिए शिक्षक को प्रत्येक बच्चे को अलग–अलग सुनना होगा तभी यह जाना जा सकेगा कि सुर, लय, धुन, शब्द, भाव के प्रति बच्चे की सजगता की स्थिति किस तरह की है। बीच में शिक्षक अलग गीत गाकर भी यह जाँच कर सकते हैं कि बच्चा संगीत के मूल तत्वों के प्रति कितना सजग है या कुछ बदलाव कर गाने पर भी यह जाना जा सकता हैं।

तीसरा मूल्यांकन संकेतक– प्रतिक्रिया

प्रदर्शन कला में मूल्यांकन के इस क्षेत्र के अन्तर्गत सांगीतिक ज्ञान की समझ के क्षेत्र पर काम करना अर्थात् प्रकृति में विविध प्रकार की ध्वनियों/लय को सुनना, उनका विश्लेषण करना एवं उनमें भेद करना है। इसके अलावा संगीत सुनकर अनुभव करना, उस पर सोचना, समझने की कोशिश करना, संगीत की सराहना करना एवं सुनकर प्रतिक्रिया करना शामिल है। इस क्षेत्र में उदाहरण के साथ विस्तार से टिप्पणी लिखी जानी चहिए। प्रतिक्रिया के विभिन्न स्तरों को ध्यान में रखते हुए मूल्यांकन किया जा सकता हैः–

स्तर 2 – सम्बध, रूचि रखने वाला

स्तर 3 – विश्लेषणात्मक

प्रदर्शन कला की विभिन्न विधाओ (संगीत,नृत्य,रंगमंच) पर शिक्षक बच्चों से विस्तार से बातचीत कर सकते हैं, उन विधाओं की विशेषताओं को बताते हुए उसके सौन्दर्य पर बच्चे का ध्यान ले जा सकते हैं। ताकि बच्चे सुनना, समझना एवं उसकी सराहना करना सीखें, विभिन्न विधाओं के ज्ञान की समझ के क्षेत्रों पर भी साथ–साथ काम कर सकते हैं। इस कार्य का आधार विभिन्न विधाओं को सुनना, देखना, समझना, करना पर आधारित हो सकता हैं। इसमें शिक्षक बच्चों से विभिन्न प्रकार के प्रश्न कर सकते हैं जिससे उनकी प्रतिक्रिया को नोट किया जा सकें।

4.8 मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल –

मूल्यांकन संबंधी सूचनाओं का इस्तेमाल निम्न तरीके से किया जा सकता है–

4.9.1 रिपोर्टिंग और प्रतिपुष्टि (Feedback) के लिए –

सीखने की प्रक्रिया के दौरान जब मूल्यांकन साथ–साथ चल रहा होता है तब शिक्षकों के पास बच्चों के बारे में बहुत सी सूचनाएँ जुट जाती हैं। सूचनाएँ दर्ज कर लेने एवं उनका विश्लेषण कर लेने के बाद यह

जान लेना जरूरी होगा कि इनका क्या किया जाए? इस बात से आप सहमत होंगे कि सामान्यतः सभी विद्यालयों में बच्चों के सीखने और प्रगति के मूल्यांकन से जुड़ी सूचनाएं एक रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से दी जाती हैं। ये रिपोर्ट कार्ड एक प्रकार से भिन्न–भिन्न विषयों में बच्चों के प्रदर्शन और निष्पादन की एक तस्वीर विद्यालयी सत्र में आयोजित टेस्ट, परीक्षाओं से प्राप्त अंकों और ग्रेडों के आधार पर प्रस्तुत करते है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों का जो मूल्यांकन किया जाता है और इस संबंध में वे जो भी रिकार्ड रखते हैं, वे सभी शिक्षकों को मदद करते है –

- यह समझने में कि बच्चे किस तरह और कितना सीख पा रहे हैं।
- स्वयं की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को उन्नत करने में उपयोगी ।
- प्रत्येक बच्चे की सीखने की प्रक्रिया को समुन्नत करने के उद्देश्य से उन्हें और अधिक अर्थपूर्ण अवसर तथा अनुभव प्रदान करने की दिशा प्रदान करते हैं।

4.8.2 शिक्षक के लिए –

शिक्षक की प्रतिबिंबात्मक टिप्पणी प्रगति पत्रक बनाने में मदद करेगी। प्रगति पत्रक एक निश्चित अवधि में बच्चे की प्रगति से संबंधित स्पष्ट तस्वीर प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगा। इसी स्थिति में शिक्षक द्वारा बच्चों के सीखने की दिशा को अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है। बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में क्या–क्या कठिनाइयाँ आ रही हैं और इन कठिनाइयों तथा अन्तरों का समाधान किस तरह से ढूंढा जा सकता है? प्रतिपुष्टि ही वह माध्यम है जिसके जरिए शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में परिवर्तन लाकर समाधान ढूढ़ाँ जा सकता है।

प्रतिपुष्टि के संबंध में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि शिक्षक द्वारा दी जाने वाली रिपोर्ट में क्या–क्या होना चाहिए। बच्चे द्वारा की गई प्रगति का उल्लेख निम्न तरीके से किया जा सकता है –

- बच्चे द्वारा किए गए कामों का सग्रह और उनका प्रदर्शन बच्चे की सीखने के प्रति समझ बनाने में मददगार होगा।
- बच्चे के व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता हैं।
- बच्चे के सीखने के तरीकों के बारे में गुणात्मक बातें कही जा सकती हैं।
- बच्चे द्वारा किए गए कामों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है।
- बच्चे के सीखने की प्रक्रिया के मजबुत पक्ष को और अधिक उभारकर तथा उन पहलुओं पर विशेष ध्यान देकर जहां पुनर्बलन की आवश्यकता है, आदि।

4.8.3 बच्चों को संप्रेषित करना –

अध्यापन में जब बच्चे बहुत सी गतिविधियों में संलग्न होते हैं तब शिक्षक अनौपचारिक रूप से प्रतिपुष्टि देते रहते हैं। बच्चे शिक्षकों, दूसरे बच्चों या समूहदार/जोड़ीदार की कार्य प्रणाली का अवलोकन करते समय स्वयं की गलतियां भी दूर कर लेते हैं और समुन्नत भी करते रहते हैं। सीखने के संदर्भ में स्थिति समस्याजनक तब हो जाती है जब रिपोर्ट केवल यह दर्शाती है कि बच्चे सही तरह से कर नहीं पाते, यानी कि उनकी अक्षमताओं और असफलताओं की ही व्याख्या की जाती है। इस तरह की रिपोर्ट बच्चों को हतोत्साहित/निरूत्साहित करती है। शिक्षकों को निम्न तरह की व्याख्या रिपोर्ट कार्डों में करनी चाहिए –

- प्रत्येक बच्चे से उसके कार्यो (रचना) के बारे में बातचीत करें, कौन–कौन सा काम अच्छी तरह से किया गया है, कौन–सा नहीं और कहाँ–कहाँ सुधार की जरूरत है।

- बच्चे को अपना–अपना पोर्टफोलियों देखने तथा वर्तमान में (हाल ही में) किए गए कार्यों (रचना) की तुलना पुराने कार्यो (रचना) से करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- बच्चे व शिक्षक दोनों मिलकर इस बात की पहचान करें कि बच्चों को किस तरह की मदद की आवश्यकता है।
- काम करने की प्रक्रिया के दौरान या बाद में भी सकारात्मक व रचनात्मक टिप्पणियाँ ही देनी चाहिए।

4.8.4 अभिभावकों के साथ बाँटना –

सामान्यतः सभी अभिभावक को यह जानने में रूचि रहती है कि उनका बच्चा विद्यालय में कैसा कर रहा है, उसने क्या–क्या सीखा है, दूसरे बच्चे किस तरह का प्रदर्शन कर रहे हैं एक निश्चित समयावधि के भीतर उनके बच्चे की प्रगति के बारे में भली–भाँति बता दिया जाता है ''अच्छा कर सकता है'', ''अच्छा'', ''खराब'', ''अधिक प्रयास करने की जरूरत है'', किसी भी अभिभावक के लिए इन टिप्पणियों की क्या सार्थकता हैं? क्या इस तरह की टिप्पणियाँ को किसी तरह की स्पष्ट सूचना प्रदान कर सकती हैं कि उनका बच्चा क्या कर सकता है और क्या सीख चुका है। अभिभावकों के लिए टिप्पणियों स्पष्ट व सरल भाषा में कुछ निम्न प्रकार से दिया जा सकता हैं –

- बच्चे क्या–क्या कर सकते हैं, क्या करना चाह रहे हैं और क्या करने में उसे कठनाई होती है।
- बच्चे को क्या–क्या करना पंसद है और क्या नहीं।
- बच्चों द्वारा किए गए कामों के नमूने, गुणात्मक कथन, मात्रात्मक प्रतिपुष्टि के साथ प्रस्तुत किए जा सकते हैं।
- बच्चों ने किस तरह से सीखा (प्रक्रिया) और सीखने में कहाँ–कहाँ कठिनाई का सामना किया।
- बच्चों के कार्यों की चर्चा अभिभावकों से करना जो उनकी सफलता और सुधार के क्षेत्रों की दिखाने में मदद करें।
- अभिभावकों के साथ चर्चा करना कि वे बच्चों की किस तरह से मदद कर सकते हैं और घर पर उन्होंने किस तरह का अवलोकन किया है।
- बच्चों की उन्नति/प्रगति को ग्राफ (लेखा चित्र) के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसे समझना बच्चों व अभिभावकों के लिए सरल होगा।

4.8.5 शिक्षक के कार्यों की प्रतिपुष्टि –

मूल्यांकन शिक्षक के द्वारा किए गए कार्यों का प्रतिपुष्टि (Feedback) भी पेश करता है तथा इससे शिक्षक अपने कार्यों का मूल्यांकन निम्न सवाल के द्वारा कर सकते है –

- ♦ क्या मेरे बच्चे पूरी तरह से गतिविधियों में संलग्न हैं और ठी तरह से सीख पा रहें हैं? यदि नहीं तो वे किस स्तर पर हैं?
- ♦ क्या मैं बच्चों की भिन्न–भिन्न जरूरतों को समझ सकता हूँ? यदि हाँ तो उन जरूरतों की समझ के आधार पर मैं क्या करने वाला हूँ?
- ♦ क्या कुछ ऐसे बच्चे हैं जो पहले स्तर तक पहुँचने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं? उन्हें प्रेरित तथा उत्साहित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए।
- ♦ बच्चों को एक स्तर से अगले स्तर तक ले जाने के लिए मुझे अपनी अध्यापन प्रक्रिया को उन्नत करने के लिए क्या करना चाहिए?

- ♦ मैं बच्चों को स्व–आकलन के लिए कैसे प्रेरित कर सकता हूँ?
- ♦ मुझे किन–किन क्षेत्रों में कठिनाइयाँ आती हैं – (बच्चों का समूह बनाने में, बच्चों की उम्र और स्तर के अनुसार गतिविधियों का चयन करने में, सामग्री की कमी आदि)
- ♦ मुझे और किस तरह की सहायता की जरूरत है? मुझे कौन इस तरह की मदद दे सकता/सकती है?
- ♦ बेहतर अध्यापन अधिगम अभ्यासों के लिए और क्या–क्या प्रयास किए जा सकते हैं?

गतिविधि –

- ● आप अपनी कक्षा के बच्चों का प्रदर्शन कला के किसी एक विधा में मूल्यांकन संकेतकों के आधार पर कीजिए और पता लगाइए की बच्चों के सीखने का स्तर क्या हैं इस पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

प्रदत्त कार्य

- अपने विघालय में एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन करें तथा बच्चों द्वारा बनाये गये चित्रों की प्रदर्शनी लगायें। बच्चों द्वारा बनाये गये चित्रों का आकलन आप किन–किन मापदण्ड़ों पर करेंगे और कैसे करेंगे एक रिपोर्ट तैयार करें।
- किसी एक कला विधा में बच्चों के मूल्यांकन हेतु एक पोर्टफोलियों का निर्माण कीजिए। तथा यह भी बताइये कि इसकी मदद से कला में मूल्यांकन कितना प्रभावी हो सकता हैं।

परिशिष्ट

रिपोर्ट लेखन –

कला शिक्षा के अन्तर्गत रिपोर्ट तैयार करने हेतु एक प्रारूप यहाँ दिया जा रहा है – आप अपनी सुविधानुसार इनमें परिवर्तन कर सकते हैं।

1. शीर्षक
2. विषय सामग्रियों की सूची
3. सारांश
4. प्रस्तावना
5. मुख्यपाठ
6. निष्कर्ष
7. अनुशंसाएं
8. परिशिष्ट

शीर्षक –

शीर्षक रिपोर्ट के सभी विषयों को दर्शाने वाला हो। यह एक वक्तव्य या प्रश्न के रूप में हो सकता है। इसे संक्षिप्त रखें। लेकिन प्रस्तुति की तारीख, किस उद्देश्य से रिपोर्ट तैयार किया गया है लिखें।

विषय सामग्रियों की सूची –

यदि रिपोर्ट 10 पृष्ठों से ज्यादा है तो विषय सामग्रियों की सूची बनाएं, यह नया पृष्ठ हों। इस सूची में प्रत्येक अनुभाग के पृष्ठों की संख्या का उल्लेख हो । पृष्ठांकन की शुरूवात परिचय से करें। परिचय से पहले अनुभाग के पृष्ठों की संख्या का उल्लेख हो। पृष्ठांकन की शुरूवात परिचय से करें। परिचय से पहले सभी पृष्ठों के क्रमांक रोमन अंकों में देवें।

सारांश –

इसे अनुभाग के सबसे अंत में लिखें, जब सारे अध्याय का लेखन कार्य समाप्त हो जाए। इसका लेखन इस प्रकार हो कि इस अध्याय को अलग से पढ़कर सम्पूर्ण रिपोर्ट के विषय में जानकारी हो जाए।

प्रस्तावना –

प्रस्तावना के माध्यम से पाठकों के लिए परिदृश्य निर्मित किया जावेगा। यह रिपोर्ट क्यों लिखी गयी है तथा इसकी पृष्ठभूमि क्या है इसका भी विवरण होना चाहिए। इस अध्याय में यह भी शामिल हो कि परिणाम तक पहुँचने के लिए कौन सी विधि का उपयोग किया जावेगा।

मुख्य पाठ –

इस भाग में परिणामों की विवेचना होगी। इस हेतु शीर्षकों का उपयोग किया जाना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एक पृथक विचार को प्रतिपादित करे। इस भाग में ग्राफ, चित्र इत्यादि का उपयोग किया जा सकता है।

निष्कर्ष –

इस भाग में रिपोर्ट के मुख्य बिन्दुओं को सम्मिलित करें। ध्यान रहे कि इस भाग में कोई नई सामग्री प्रस्तुत न की जावे। यहाँ आप प्रमाणों के आधार पर अपना अभिमत प्रस्तुत कर सकते है?

अनुशंसाएँ –

अनुशंसाएँ रिपोर्ट के निष्कर्षो एवं भविष्य के कार्यो के आधार पर की जानी चाहिए। इस भाग में यदि आवश्यकता हो तो विभिन्न उप खण्डों में अनुशंसाएं की जा सकती हैं।

परिशिष्ट –

इस भाग में सांख्यिकीय आंकड़ों, गणना, प्रश्नावली उपयोग में लाई गई तकनीकी शब्दावली इत्यादि लिए जा सकते है।

संदर्भ सूची –

कला शिक्षा एवं लोक संस्कृति भाग–2

- शिक्षा का वाहन कला, देवी प्रसाद, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
- कला संगीत, नृत्य और रंगमंच राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली।
- हस्तशिल्पों की धरोहर–राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली।
- डिप्लोपा इन एजुकेशन, प्रथम वर्ष 2013 हेतु कला एवं कला शिक्षण, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, रायपुर छ.ग.।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली।
- प्राथमिक शाला में कारीगरी की शिक्षा, गिजुभाई, साक्षरता केन्द्र, दिल्ली।
- नाट्यशास्त्र–पं. बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
- Source book on assessment for class I-V, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली।
- डिप्लोमा इन ऐलीमेन्ट्री एजुकेशन (दूरस्थ शिक्षा) स्वाध्यायी सामग्री, कला शिक्षा–2 राज्य शिक्षा शोध एवं शिक्षक परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी., महेन्द्र, पटना बिहार)
- सेवापूर्ण शिक्षक प्रशिक्षाण, विषय–कला शिक्षण, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, राजस्थान, राज्य पाठ्य पुस्तक मण्डल, जयपुर।
- डॉ. माता प्रसाद शर्मा, अपोलो प्रकशन, जयपुर 2008।
- युग युगीन भारतीय कला महेश चन्द्र जोशी, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोमती गेटर जोधपुर (राजस्थान)।
- कला शिक्षक, डॉ. मुनेष कुमार डोला हाऊस बुक सेलर एण्ड पब्लिकेशन 1688 न्यू साउथ देहली 110006।
- भारतीय संस्कृति और कला, प्रो. विजय कुमार पांडे साहित्य संगम इलाहाबाद (उ.प्र.) संस्करण प्रमाण 2003।

वाद्य यंत्र

डमरू

तबला

हारमोनियम

ढोलक

मंजीरा

मृदंग

ताशा

नगाड़ा

बांसुरी

सिंग बाजा

खंजीरा

डफ्ली

कला

बांस कला

छपाई कला

धातु शिल्प कला

ढोकरा कला

मधुबनी कला

मॉर्डन आर्ट

कला

वर्ली कला

साऊथ कला

गंधार कला

कालीघाट चित्र कला

रजवार भित्ती चित्र कला

कशीदाकारी कला

ऐतिहासिक इमारतें

सिरपुर, छत्तीसगढ़

चारमीनार, हैदराबाद

कुतुबमीनार, दिल्ली

कोणार्क सूर्य मंदिर, ओडिसा

लिंगराज मंदिर, ओडिसा

साँची का स्तूप, मध्यप्रदेश

पारम्परिक लोक नृत्य

भंवाई नृत्य, राजस्थान

कर्मा नृत्य, छत्तीसगढ़

शैला नृत्य, छत्तीसगढ़

गरबा नृत्य, गुजरात

पंथी नृत्य, छत्तीसगढ़

गेड़ी नृत्य, छत्तीसगढ़

पारम्परिक लोक नृत्य

कथकली नृत्य, केरल

लावणी नृत्य, महाराष्ट्र

बिहु नृत्य, असम

सुआ नृत्य, छत्तीसगढ़

राऊत नाचा, छत्तीसगढ़

मुरिया नृत्य, छत्तीसगढ़